महाभारत के तेरह वर्ष

–ग. वा. कवीश्वर

वनवास की गूढ कालगणना का सप्रमाण स्पष्टीकरण

महाभारत के तेरह वर्ष

लेखक
ग. वा. कवीश्वर

१९७७

मूल्य सात रुपये

प्रकाशक

ग. वा. कवीश्वर

३४, जानकी नगर,

इन्दौर–१ (मध्यप्रदेश)

मुद्रक : विमल मुद्रायन, इन्दौर

सर्वाधिकार लेखक के पास सुरक्षित

प्रमुख वितरक—

कमल प्रकाशन

५४, प्रिंस यशवन्त रोड़,
इन्दौर

भूमिका

'महाभारत युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य' यह मेरी पुस्तक सन् १९७२ में (हिन्दी, मराठी तथा अंग्रेजी में) प्रकाशित होने के बाद, अब उसी से सम्बन्धित यह दूसरी पुस्तक पाठकों के समक्ष रखने में मुझे हर्ष होता है । उस पुस्तक में युद्धकालीन कूटों की चर्चा थी; इसमें युद्धपूर्व कालगणना की चर्चा है । वस्तुतः यह उस पुस्तक का पूर्वार्ध है । ये दोनों परस्पर पूरक विवेचन मिलकर महाभारत की अन्तर्गत कालगणना का एक पूरा, भव्य तथा सुसंगत चित्र दृष्टि के सामने खड़ा होता है । महाकवि ने अतीव कुशलता से छिपाये कई विलक्षण रहस्य अब प्रकाश में आ रहे हैं ।

इन दो पुस्तकों के अलावा मैंने इस विषय की चर्चा गत दस वर्षों में कई भाषणों द्वारा भी की है । भाषणों के प्रमुख स्थान थे—श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ,दिल्ली(जहां मैंने इस विषय का सात व्याख्यानों में प्रथम प्रतिपादन किया); नागपुर स्थित विदर्भ साहित्य संघ, तथा विदर्भ शोध संस्था; अमरावती; अहमदाबाद; पुणें; खंडवा; उज्जैन में कालिदास महोत्सव तथा अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद्; इन्दौर में संस्कृत महाविद्यालय; मुम्बई में मराठी साहित्य संघ (दो बार); संस्कृत प्रचारिणी सभा, गोवा; महाभारत सम्मेलन–भोपाल; वाराणसी, तथा प्रयाग । इनके अलावा आकाशवाणी से भी भाषण प्रसारित हुए ।

उस पूर्वप्रकाशित पुस्तक में स्थलाभाव के कारण मैं युद्धकाल संबंधी कुछ विषयों की चर्चा नहीं दे सका । द्वितीयावृत्ति में वह समाविष्ट की जावेगी । किन्तु इस दरम्यान उनका स्पष्टीकरण मैंने अलग से मराठी लेखों में कर दिया है; जिनका निर्देश कुछ आलोचकों के समाधानार्थ यहाँ करता हूं ।

वहाँ मैंने इतना ही कहा था कि, युद्धारम्भ के समय चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र में था; किन्तु शनि, मंगल, गुरु, सूर्य आदि की भी स्थिति उसमें स्पष्ट नहीं की थी। वह मैंने नागपुर की विदर्भ शोध संस्था के सन् १९७३ के वार्षिक प्रकाशन में विस्तार से बता दी है।

उस पुस्तक में मैंने युद्धकालीन अवकाश दिनों के सर्वसामान्य विवेचन के अलावा दो अवकाश दिनों के स्पष्ट प्रमाण भी दिये थे। बाद में तीन और अवकाश दिनों के वैसे ही प्रमाण 'मराठवाड़ा शोध संस्था' के सन् १९७५ के वार्षिक प्रकाशन में मैंने दिये हैं। साथ में महाभारत पर आधारित पन्द्रह प्रमुख कसौटियाँ भी दी हैं, जिनकी सहायता से जिज्ञासु पाठक युद्धकालीन तिथिगणना पर मेरे या अन्य किसी के विवेचन की ठीक परीक्षा कर सके।

भीष्म का शरशय्योपदेश पांच दिन चला यह मैंने उस पुस्तक में कहा था; किन्तु विस्तृत प्रमाण नहीं दिये थे। बाद में नागपुर की 'तरुण भारत' पत्रिका के सन् १९७४ के दीपावली अंक में मैंने वे प्रमाण देकर, निम्न दो कूट वचनों का शाब्दिक रहस्य भी स्पष्ट कर दिया है—"पंचाशतं षट् च कुरुप्रवीर। शेषं दिनानां तव जीवितस्य" (शांति पर्व ५१-१४); तथा "उषित्वा शर्वरीः श्रीमान् पंचाशन्नगरोत्तमे" (अनुशासन पर्व १६७-५)।

कुछ अन्य विषयों की भी चर्चा मैंने की है। युद्ध में किस पक्ष का मुँह पूर्व की ओर तथा किसका पश्चिम को था, इस कुतूहलजनक प्रश्न का विस्तृत उत्तर मैंने मुम्बई की 'ज्ञानदूत' पत्रिका के सन् १९७२ के दीपावली प्रकाशन में दिया है। एवं उसी के सन् १९७४ के दीपावली प्रकाशन में 'जयद्रथ वध में श्रीकृष्ण माया का रहस्य' लेख आया है। जयद्रथ वध के समय श्रीकृष्ण ने मायावी सूर्यास्त का दृश्य निर्माण करते हुए भी जयद्रथ को धोखा नहीं दिया यह सूक्ष्म तथ्य उसमें विशद् किया है।

उस पुस्तक में दी तिथि तालिका में पृ. ५१ पर कृष्ण अष्टमी का लोप तथा पृ. ५२ पर पौष शुक्ल पंचमी की वृद्धि बताई है। किन्तु उसके बिना भी काम चज सकता है। अतः वहां कृष्ण नवमी से पौष शुक्ल पंचमी (द्वितीय) के स्थानों पर क्रमशः कृष्ण अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पौष शुक्ल प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी एवं पञ्चमी पढ़ा जावे। वैसे उस कालावधि में एक तिथिलोप तथा तिथिवृद्धि संभव है; किन्तु उनका निश्चित स्थान उन दिनों का पूरा पंचांग तयार करने पर ही बताया जा सकेगा।

अब मेरे विवेचन पर हुई कुछ अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रतिक्रिया यहाँ दिग्दर्शित करता हूं।

विद्वद्वर्य **डॉ. सम्पूर्णानन्द**, भूतपूर्व मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश, ने लिखा "आप कर रहे महान् कार्य........क्या आपके शोध का प्रतिपादन करने हेतु आप वाराणसी आ सकेंगे ? हम सब उपलब्ध विद्वानों को आमंत्रित करेंगे........आपका प्रत्येक पत्र मेरी तृष्णा तीव्र करता हुआ मेरी जिज्ञासा बढ़ाता है........आपने इस विषय पर जो नया प्रकाश डाला है वह सर्वथा उपादेय है।" महामहोपाध्याय पं. **परमेश्वरानन्द शास्त्री**, विद्याभास्कर (भारत सरकार द्वारा सम्मान पत्र से विभूषित, भूतपूर्व सदस्य केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड), दिल्ली, "आपके वैदुष्यपूर्ण व्याख्यानों से दिल्ली का श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यपीठ गौरवान्वित हुआ है। आपके व्याख्यानों से महाभारत युद्ध सम्बन्धी कई प्रचलित मान्यताओं के सम्बन्ध में गवेषणानिरत विद्वानों को पुनः विचार करने की प्रेरणा दी है।" इन्हीं व्याख्यानों पर अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के मुख पत्र **'संस्कृत रत्नाकरः'** में कहा है, "आचार्य कवीश्वरैस्तृतीये व्याख्याने तदिदं साधितं यत्पाण्डवैः साधिकमासमेव त्रयोदशवर्षाणि व्यतियापितानि। विवादस्तत्र केवलं कियन्ति दिनान्यधिकमासस्य गणनीयानीति विषयकोऽभवत्। अत्र विषये वक्तृमहोदयेन तर्कपूर्णया प्रणाल्या द्यूतस्य तिथिः

ज्येष्ठ शुक्लैकादशीति विनिश्चित्य श्रोतॄणाँ पुरस्तादुपस्थापिता........ सूक्ष्मविवेचनेन पाण्डवानां मतानुसारमज्ञातवाससमाप्तेस्तिथिः वैशाखोत्तरं द्वितीयाधिकमासस्य कृष्णाष्टमी सूचिता........पाण्डवानामनुसारमुक्ततिथौ तथा दुर्योधनस्याग्रहानुसारिण्यां तिथौ यदा श्रोतृभिर्यथायथमष्टादशदिनानामन्तरं दृष्टं तदा महाभारतकाव्ये कौरव-पाण्डवयोः रणभूम्यां प्रत्यक्षं भयावहस्सङ्गरोऽष्टादशदिनात्मक एवाभूदिति कथनस्यात्यन्तं मनोरञ्जकं रहस्यं स्पष्टीभूतं तच्च श्रोतॄणां विशेषानन्दायालमभवत् ।........गदायुद्धं शल्यवधानन्तरं द्वितीयदिवसे सम्पन्नमिति वक्तृभिः सप्रमाणमुपस्थापितं....महाभारते वर्णित समयः प्रतिदिनं न भूत्वा मध्ये एकैकमवकाशं गृहीत्वाऽभवदिति । ....युद्धारम्भ (गीता जयन्ती) तिथिः श्रीकृष्णवचनानुसारं मार्गशीर्षशुक्लपक्षात् पूर्वमागामिनी अमावास्या एव भविष्यति ।....इदं यदा वक्तृमहोदयैः प्रतिपादितं तदा विश्वप्रसिद्धाया महाभारतकथाया प्रगोपितमिदं महत् परं सरलं रहस्यं श्रुत्वा श्रोतृगणः फुल्लरोमाऽभवत् ।........आचार्यकवीश्वरैरन्तिमे व्याख्याने रहस्यस्यास्य कतिपयानि महत्त्वपूर्णानि प्रमाणान्यपि पुरस्कृतानि........" ('आचार्य कवीश्वर ने सिद्ध किया कि पाण्डवों ने अधिक मास सहित ही तेरह वर्ष पूर्ण किये थे; विवाद केवल अधिकमास दिन कितने गिनना इसका था । वक्ता महोदय ने तर्कपूर्ण ढंग से द्यूत की तिथि ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी निश्चित कर बताई........उन्होंने सूक्ष्म विवेचन द्वारा बताया कि पाण्डवों के मतानुसार अज्ञातवास समाप्ति तिथि वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास की कृष्ण सप्तमी थी........वह तिथि तथा दुर्योधन के आग्रहानुसार अज्ञातवास समाप्ति की तिथि इनमें जब श्रोताओं ने ठीक अठारह दिन का अन्तर देखा, तो महाभारत काव्य में कौरव-पाण्डवों का रणभूमि पर प्रत्यक्ष भयावह संग्राम अठारह दिन ही बताने का रहस्य स्पष्ट होकर श्रोताओं को विशेष आनन्द हुआ........ गदायुद्ध शल्य वध के बाद दूसरे दिन हुआ यह सप्रमाण प्रस्थापित किया.... महाभारत में वर्णित युद्ध प्रतिदिन न होते एक-एक दिन अवकाश लेकर होता था, युद्धारम्भ (गीता जयन्ती) तिथि श्रीकृष्ण वचनानुसार मार्गशीर्ष

शुक्ल पक्ष के पूर्व की अमावास्या ही होती है........विश्वप्रसिद्ध महाभारत कथा में छिपाया रहस्य देखकर श्रोता आनन्दमग्न हो गये........ अन्तिम व्याख्यान में इस रहस्य के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रमाण भी दिये....")

इन्दौर की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित पत्रिका **'नई दुनिया'** ने एक विशेष सम्पादकीय टिप्पणी में (दि. १८-१० ६७) मेरे इस प्रतिपादन के विषय में लिखते हुए कहा, "भारतीय युद्धकथा के व्यास द्वारा छिपाये गये रहस्य का उद्‌घाटन कर आपने एक ऐसी समस्या हल की कि जो प्राचीन एवं अर्वाचीन पंडितों को उलझाये हुए थी ।"

सुप्रसिद्ध प्राच्यविद्याविशारद तथा संस्कृत के पंडित **डॉ. वा. वि. मिराशी**, डी. लिट्. (नागपुर):—"महाभारत युद्ध कौनसी तिथि पर प्रारम्भ हुआ और कितने दिन चला ये प्रश्न अति प्राचीनकाल से अत्यन्त वादग्रस्त बने हैं । 'महाभारत' में उस विषय में कई उल्लेख हैं; किन्तु किसी को भी उन सब तो क्या अपितु बहुतांश उल्लेखों की भी सुसंगति बताते नहीं आई थी........आचार्य ग. वा. कवीश्वर ने महाभारत ग्रन्थ के युद्ध विषयक वचनों का सूक्ष्म अध्ययन कर वे सब सुसंगत हैं; युद्ध की सब तिथियाँ, बलराम तीर्थयात्रा के दिन, भीष्म निधन आदि के महाभारत में उल्लेख कैसे बराबर हैं यह सविस्तर बताया है........यह प्रथम विस्तारपूर्वक प्रतिपादन करने का श्रेय पूर्णतया प्राध्यापक कवीश्वर को है........ यदि यह विवेचन मान्य होता है, और वह सर्वमान्य होना चाहिये इतने प्रमाणों से साधार प्रतिपादन किया गया है, वर्तमान में प्रचलित कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ (जैसे गीता जयन्ती तिथि, भीष्म निधन तिथि) बदलनी पड़ेगी" । **श्री का. ल. जोशी**, कुलपति इन्दौर विश्वविद्यालयः—"आचार्य कवीश्वर ने महाभारत कालगणना के क्षेत्र में एक नयी दृष्टि प्रस्तुत कर, कौरव-पाण्डव युद्ध के काल का मौलिक तथा तर्कसंगत स्पष्टीकरण दिया है । महाभारत के अभ्यासकों द्वारा आचार्य कवीश्वर के सिद्धान्तों का गम्भीर विचार होना चाहिये ।" इन्दौर के प्रोफेसर **डा. दी. गो. वालिंबे**

ने इस विवेचन को 'क्रान्तिकारी शोध' बताया। इसी प्रकार मेरे भाषण श्रवण कर इन्दौर संस्कृत महाविद्यालय के भूतपूर्व प्राचार्य, काव्य-सांख्य तीर्थ, **पंडित करमलकर शास्त्री** ने निम्नलिखित पंक्तियाँ सभा में सुनाई।

ग. वा. कवीश्वर ! प्राज्ञ ! भवता सूक्ष्मबुद्धिना
चिरकालं समभ्यासं कृत्वा शोधनकारिणा ॥
अद्ययावच्छोधकैस्तु न ज्ञातानां च सूरिभिः
इत्येव नो वैपरीत्याद्दर्शितानां दुराग्रहैः ॥

महाभारतकूटानां दृष्टानां यत्र तत्र च
पौर्वापर्यं सुविज्ञाय स्थलान्युद्धृत्य धैर्यतः ॥
प्राचार्येण विनम्रेण सुवक्त्रा निर्भयेण च
सभ्यगर्थः श्रावितोऽद्य सप्ताहं चारुरीतितः ॥

मुम्बई के मेरे व्याख्यानों का वृत्तांत देते हुए वहाँ के **'मराठा'** पत्रिका ने कहा, "इस अत्यन्त मूलगामी शोध से महाभारत के अध्ययन क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात हुआ है।" गोवा की प्रमुख पत्रिका **'गोमंतक'** ने सम्पादकीय लेख में कहा, "इस नये अनुसंधान के फलस्वरूप अब गीता जयन्ती की तिथि बदलने का समय आ गया है।" **'नागपुर टाइम्स'** ने लिखा, "अकेले एक व्यक्ति की यह खोज........शोध जो स्वयं उन्हीं का है........(महाभारत की) यह तथा अन्य भी कई घटनाएँ, जिनकी सुसंगति लगाने के अभी तक के सब प्रयास विफल हुए थे, आपने सुस्पष्ट कर एक सूत्रबद्ध विवेचन में प्रस्तुत किये हैं।" पुणे के **प्रा. अ. दा. आठवले** अपने 'महाभारताचे वास्तव दर्शन' पुस्तक में लिखते हैं, "प्रा. ग. वा. कवीश्वर ने तो अब महाभारत में उल्लिखित तिथि-दिन-नक्षत्रों की संगति उत्तम प्रकार से बैठाकर आज तक कइयों को हल न हुआ कूट सुलझाकर बताया है।" नागपुर की पत्रिका **'तरुण भारत'** ने इस विवेचन को महाभारत युद्ध तिथियों पर सर्वोत्तम प्रकाश बताया है।

उज्जैन के **विक्रम विश्वविद्यालय** ने तथा उसके कुलपति सुविख्यात कवि **डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन'** डी. लिट्. ने इस अनुसंधान को जो प्रोत्साहन

दिया उसके लिये मैं विशेष कृतज्ञ हूं। न केवल उन्होंने शोध पत्रिका 'विक्रम' का विशेषांक निकालकर उसमें मेरे महाभारत युद्धकालीन निष्कर्षों को (हिन्दी तथा अंग्रेजी में) एकमेव स्थान दिया; अपितु विश्व-विद्यालय की कार्यकारिणी ने एक विशेष ठहराव द्वारा इस प्रतिपादन को "विश्व संस्कृति में एक महत्वपूर्ण योगदान" तथा "इतिहास की बहुत बड़ी जटिल गुत्थी सुलझाने का स्तुत्य प्रयास" बताया।

विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा जब यह विवेचन विदेशों में भी पहुँचा, तो अमेरिका के न्यूयार्क विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध प्रोफेसर डॉ. स्टेला क्रेमरिश ने से उसे most revealing and important for future research बताया।

अब इस पर हुई प्रतिकूल प्रतिक्रिया भी यहाँ देता हूं। कुछ आलोचना वस्तुतः जिज्ञासा मूलक थी। बड़ोदा के एक विद्वान ने मुम्बई की 'भारतीय इतिहास आणि संस्कृति' पत्रिका में (जनवरी १९७२) कुछ शँकाएँ उठाई। तब तक मेरा मराठी विवरण ही प्रकाशित हुआ था; हिन्दी तथा अंग्रेजी' जो अधिक विस्तृत है, छपा नहीं था। अतः मैंने उसी पत्रिका में (जुलै १९७२) उन आशंकाओं पर सहर्ष स्पष्टीकरण दिया। उक्त लेखक इस प्रकार गणना करते हैं। शांतिवार्ता समाप्त होकर श्रीकृष्ण की उपप्लव्य वापसी तथा बलराम यात्रा प्रारम्भ कार्तिक (अमावास्यान्त) कृष्ण पंचमी पुष्य नक्षत्र पर; आगामी अमावास्या को युद्ध की तैयारी का प्रारम्भ (वे उद्योग पर्व १४६-१८ में श्रीकृष्ण के 'युज्यतां' शब्द का अर्थ प्रत्यक्ष युद्ध न लेते युद्ध की तैयारी करो ऐसा लेते हैं); मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी पर युद्धारम्भ, तथा मार्गशीर्ष अमावास्या को (श्रवण नक्षत्र पर) युद्ध समाप्ति। फिर वे बलराम यात्रा की गणना इस प्रकार चाहते हैं—कार्तिक कृष्ण ५ से अमावास्या = **११** दिन, और मार्गशीर्ष के तीस दिन, कुल ४१ दिन।

इस पर प्रथम बात यह है कि बलराम अपनी यात्रा का अन्तिम दिन ४२ वां बताते हैं, ४१ वां नहीं। किन्तु इसके अलावा यात्रा प्रारम्भ

तिथि कार्तिक कृष्ण पंचमी भी मान ली, तो उस पुष्य नक्षत्र दिवस से आगामी अमावास्या सात दिन दूर थी ऐसा श्रीकृष्ण का स्पष्ट वचन होने से अमावास्या तक ग्यारह दिन नहीं हो सकते। उधर मार्गशीर्ष के पूरे तीस दिन गिने तो शुक्ल एकादशी से अमावास्या तक बीस दिन होंगे, और युद्ध समाप्ति कृष्ण १३ को मानना पड़ेगी, जिस दिन श्रवण नक्षत्र नहीं आयगा। यदि उस बीच दो तिथिलोप माने तो अमावास्या तक वह समय अठारह दिन का होगा, किन्तु उससे बलराम यात्रा में दो दिन और भी कम होंगे।

अब सवाल रहा 'युज्यताम्' का। कई अन्य आलोचक भी इसी प्रकार विचार व्यक्त करते हैं। यदि उस शब्द के साथ सेनाओं का उल्लेख होता तो शायद 'सेनाओं को तैयार करो' ऐसा अर्थ लिया जा सकता। परन्तु वहाँ 'संग्राम' शब्द स्पष्टतः आया है। और युद्ध की तैयारी तो तीन-चार माह पूर्व से ही चल रही थी। उसके लिये श्रीकृष्ण द्वारा तिथि घोषित करने का सवाल ही क्या था? फिर, दोनों सेनाओं ने कुरुक्षेत्र के लिये अपने अपने स्थानों से उस पुष्य नक्षत्र दिवस पर ही प्रस्थान भी कर दिया था; तब अगली अमावास्या को इस बारे में और क्या होना था?—वह तो कुरुक्षेत्र पर प्रत्यक्ष युद्धारम्भ ही करना था। किन्तु इस सबके अलावा, युद्धारम्भ मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी पर मानने से भीष्म के पतन से शरशय्या की अट्ठावन रात्रि सिद्ध नहीं होगी।

डॉ. काणे, डॉ. दप्तरी आदि कई विद्वान उक्त वचन में 'संग्रामो युज्यताम्' का अर्थ प्रत्यक्ष युद्धारम्भ ही करते हैं। बात इतनी ही है कि, वे लड़ाई लगातार तथा भीष्मनिधन तिथि माघ शुक्ल अष्टमी मानते रहे; और इस कारण वास्तविक तिथिगणना ठीक नहीं कर सके। अब उस अमावास्या को युद्धारम्भ मानकर किन्तु अवकाश दिन मिलाकर, युद्ध काल की सारी तिथिगणना, बलराम यात्रा सहित, भीष्म निधन तक (जो माघ पूर्णिमा को हुआ था) पूरी सिद्ध हो रही है।

फिर भी मेरे उस उत्तर में मैंने कहा था कि किसी भी आलोचना के तर्काधिष्ठित अंश पर गम्भीर विचार कर आवश्यक हुआ तो मेरे प्रतिपादन में सुधार करने मेरी तैयारी रहेगी। अवकाश दिनों का एक उपयोग रणभूमि की दैनंदिन सफाई के लिये भी विशेष रूप से हुआ होगा, इस अनुमान पर उक्त लेखक ने दिये एक तर्क में कुछ तथ्य हो सकता है यह मैंने मान्य किया।

मुम्बई के एक लेखक ने नागपुर की विदर्भ शोध संस्था के सन् १९७१ के वार्षिक प्रकाशन में मेरे विवेचन पर आक्षेप उठाये; जिनमें एक श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर शांतिवार्ता हेतु प्रवास के दिनों के बारे में था। उस विषय में मेरा विवेचन तब तक अप्रकाशित होने से आशंका स्वाभाविक थी; अतः उस पर मेरा स्पष्टीकरण उसी आक्षेप के साथ प्रकाशित होकर अब इस पुस्तक में भी समाविष्ट है।

इसके अलावा दिल्ली के एक 'शास्त्रार्थमहारथी' महानुभाव ने वहीं की 'लोकालोक' पत्रिका में (जनवरी १९६८), तथा करीब उसी समय क-हाड (महाराष्ट्र) के एक 'पंचांगकर्ता' ने नागपुर के 'तरुण भारत' एवं पुणे के 'केसरी' में मेरे प्रतिपादन की आलोचना की। किन्तु तब मेरा विवेचन मुद्रित रूप में प्रकाशित ही नहीं हुआ था। अतः मैं उन आलोचनाओं को भी स्वाभाविक मानते हुए इतना ही कहूंगा कि, यदि प्रकाशित विवेचन देखने के बाद वे अपने विचार फिर से व्यक्त करेंगे तो मुझे उस पर ध्यान देना उचित होगा।

कुछ आलोचना बिलकुल ही निराधार एवं मनगढ़न्त थी; जिसकी निरंकुशताहीं मेरे निष्कर्षों को दृढ़ करती है! नागपूर से ही प्रकाशित एक लेख के लेखक ने कहा कि, युद्धारम्भ अमावास्या पर होते हुए भी श्रीकृष्णार्जुन का गीतासंवाद भीष्मपतन के बाद माना जावे! इस प्रकार वे परम्परागत मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को ही (एक तिथि लोप मानकर) गीता जयन्ती तिथि मानना चाहते हैं। इस पर क्या उत्तर

देना ? गीता के प्रथम अध्याय में, तथा द्वितीय के प्रारम्भ में, रणभूमि पर खड़े भीष्म का स्पष्ट निर्देश होकर, दुर्योधन द्रोण से कहता भी है कि इस युद्ध में भीष्म का रक्षण हम सबका प्रथम कर्तव्य है। फिर भी मात्र मेरा प्रतिवाद करने कोई वैसा कुतर्क करे तो क्या कहा जावे ? इसी लेख में कार्तिक कृष्ण पक्ष में पुष्य नक्षत्र के दिवस से आगामी अमावास्या 'सप्तमात् दिवसात्' से अधिक दूर बताई है। अमावास्या को ३० न लिखते १५ लिखा है ! यह भी कहा है कि पंचमी को श्रीकृष्ण शिष्टाई हुई, किन्तु सप्तमी को, जब चन्द्र मघा में बताया है, श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर छोड़ा, और अष्टमी को (जब चन्द्रमा पूर्वा नक्षत्र में बताया है) कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान हुआ। किन्तु महाभारत में मघा नक्षत्र के दिन दोनों सेनाओं को निस्सन्देह कुरुक्षेत्र पर बताया है (भीष्म पर्व अध्याय १७)। इसमें कहा है कि श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुचने पर करीब एक सप्ताह बाद शांतिवार्ता हुई; जब कि वह उसके दूसरे ही रोज हुई थी (देखिये इस पुस्तक प्रकरण ७)। इस लेख में क्वचित् एकाध विचारणीय अंश छोड़कर और भी कई ऐसी निरर्गल बातें हैं।

मुम्बई के जिस लेखक का ऊपर उल्लेख किया है, उन्होंने एक मुद्दा यह भी उठाया कि, भीष्म पतन के ही रोज उनका निधन हो गया, तथा उनकी शरशय्या, धर्मोपदेश और बाद में निधन आदि सब बातें व्यर्थ हैं। यदि कोई महाभारत को तोड़-मरोड़कर उसमें से पूरे पर्व के पर्व हटाना चाहे तो क्या उत्तर दिया जावे ? 'तान्प्रति नैष यत्नः' !

कुछ आलोचना हस्तलिखित भी आई। भिवानी (हरियाणा) से एक महाशय लिखते हैं कि, गीतोपदेश शुक्ल एकादशी को किन्तु युद्धारम्भ त्रयोदशी को माना जावे ! मैं तो युद्धारम्भ दिन ही गीतोपदेश दिवस है यह इतना निर्विवाद समझता था, जितना कौसल्या का पुत्र ही सीता का पति होना ! किन्तु क्या अब इन बातों के भी प्रमाण देना पड़ेंगे ? उक्त

पत्र लेखक युद्धकाल में तेरह दिन के दो कृष्ण पक्ष भी मानना चाहते हैं। महाभारत में तो वैसा एक ही पक्ष, और वह भी एक असामान्य घटना के रूप में, बताया है। न ही ऐसे दो लगातार कृष्ण पक्ष कभी सम्भव है।

इस प्रकार उस पुस्तक में तथा इस भूमिका में मैंने युद्धकालीन तिथि गणना के विषय में काफी विरोधी विकल्पों पर विचार किया है। नये आलोचक प्रायः इन्हीं में से कोई विकल्प लेकर आक्षेप लेते रहते हैं। वैसे तो तर्क वितर्क की कोई सीमा नहीं।

कुछ ही दिन पूर्व वाराणसी की अखिल भारत पंडित महा-परिषद द्वारा प्रयाग के कुम्भ मेले में आयोजित महाभारत कालमीमांसा सम्मेलन में मेरे भाषण हुए। उस समय परिषद के अध्यक्ष एवं सुप्रसिद्ध धार्मिक विभूति श्रद्धेय **श्री करपात्री स्वामीजी** भी उपस्थित थे; इसका मुझे विशेष आनन्द हुवा। विद्वद्वर्य स्वामीजी ने मेरी पुस्तक भी पढ़ी। तदुपरान्त उनकी ओर से उक्त महापरिषद के प्रधान मंत्री आचार्य **पं. मधुसूदन शास्त्री** ने लिखा, "आपके निबन्ध को स्वामीजी ने पूरा पढ़ा, बहुत प्रभावित हैं। मैंने तो दो बार पढ़ा। आपने महाभारत का गम्भीर अध्ययन किया है। वस्तुतः आप जानते हैं महाभारत को।"

जातेजाते मैं महाभारत की इस तिथिगणना का एक विशेष महत्त्व बताना चाहता हूं। मेरा विश्वास है कि यह तिथिगणना निश्चित होने से महाभारत युद्ध का वर्ष एवं महाभारत काव्य का रचना काल इन बहुचर्चित विषयों पर भी उपयुक्त प्रकाश पड़ेगा। युद्ध वर्ष की चर्चा करने वाले विद्वानों से मेरा हार्दिक अनुरोध है कि, वे प्रथम ये रहस्यपूर्ण तिथियाँ एवं उनके नक्षत्र निश्चित करें; अन्यथा वह चर्चा बार-बार उन्हीं परस्पर विरोधी मुद्दों पर चक्कर काटती रहती हैं। साथ में मेरा भारतवर्ष के सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों से भी नम्र अनुरोध है कि, निराधार परम्परा पर आधारित पूर्वग्रह छोड़कर, महाभारत में दिये प्रत्यक्ष भगवान श्रीकृष्ण के गूढ़ वचनानुसार गीता जयन्ती उसकी वास्तविक तिथि पर,

अर्थात् कार्तिक शुक्ल पक्ष के बाद आने वाली अमावास्या पर, मनाई जावे। महाभारत के प्रचलित भाषान्तरों पर भी इस कालगणना के संदर्भ में उचित पुनर्विचार आवश्यक होगा।

अन्त में मैं उन सब संस्थाओं का एवं महानुभावों का आभारी हूं, जिन्होंने भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों पर मेरे भाषण आयोजित कर मेरा प्रतिपादन प्रस्तुत करने का सुअवसर दिया; तथा उन पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों का भी, जिन्होंने लेख, वृत्तांत एवं टिप्पणियों द्वारा मेरे विचार और भी प्रसृत करने में सहायता दी।

मंगलवार, वैशाख शुक्ल पूर्णिमा,
दिनांक ३ मई, १९७७

ग. वा. कवीश्वर

३४, जानकी नगर, इन्दौर-१
मध्यप्रदेश

अनुक्रमणिका

प्रकरण	पृष्ठ
१—प्रास्ताविक	१
२—अधिक मास का कूट गणित	७
३—अज्ञातवास समाप्ति का दिन	२०
४—वनवास आरम्भ की तिथि	३४
५—तेरह वर्षों की गणना	४६
६—वनवास का घटना क्रम	५८
७—श्रीकृष्ण का शांतिवार्ता प्रवास	८०
परिशिष्ट : कालगणना तालिका	९८

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।

"श्री भगवान 'नारायण' को, महामानव श्री 'नर' को, विद्या की देवी श्री सरस्वती को, तथा महाकवि मुनिश्रेष्ठ श्री 'व्यास' को नमन कर 'जय' अर्थात् महाभारत का अध्ययन किया जावे ।"

* * *

ग्रन्थग्रन्थिं तदा चक्रे मुनिर्गूढं कुतूहलात्
यस्मिन् प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम् ।। आदिपर्व १-८०

अष्टौ श्लोकसहस्त्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च
अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा ।। ८१

तत् श्लोककूटमद्यापि ग्रथितं सुदृढं मुने
भेत्तुं न शक्यतेऽर्थस्य गूढत्वात् प्रश्रितस्य च ।। ८२

"तब महामुनि द्वैपायन व्यास ने महाभारत की रचना में जटिल गुत्थियाँ निर्माण कर दीं; और प्रतिज्ञापूर्वक कहा कि '(इसमें) आठ हजार आठ सौ (कूट) श्लोक (रखे) हैं, जिनका वास्तविक आशय मैं जानता हूं, (मेरा पुत्र) शुक जानता है, तथा (मेरा शिष्य) संजय कुछ जानता है और कुछ नहीं' । वे कूट श्लोक आज तक उनके गहन आशय के गूढत्व के कारण अगम्य बन बैठे हैं ।

प्रकरण १

प्रास्ताविक

महाभारत ग्रंथ विश्वसाहित्य में कई दृष्टियों से अद्वितीय है । विशेष रूप से इस प्राचीन महाकाव्य में जिस प्रकार विविध कूटस्थल रखे हैं वैसे शायद ही अन्य किसी रचना में होंगे । ये कूट विभिन्न प्रकार के हैं। कुछ दार्शनिक स्वरूप के हैं, जैसे भीष्म पर्व में भगवद्गीता संवाद में आते हैं; इनकी चर्चा गीता के भाष्यकार आज तक करते आये हैं । कुछ कूट प्रसंगवर्णन में आते हैं, जैसे जयद्रथ वध की घटना में । कुछ कूट श्लोक स्थलवर्णन से भी संबंध रखते हैं; जैसे वनपर्व में मिलते हैं । और इन सबके अलावा है कालगणनात्मक कूट; जिनके कारण महाभारत कथा की प्रमुख तिथियाँ बड़ी गूढ़ बन बैठी हैं ।

इन कालगणनात्मक कूटों के दो स्थूल विभाग किये जा सकते हैं— युद्धपूर्व एवं युद्धकालीन । युद्धकालीन कूटों का मेरा विवेचन इसके पूर्व प्रकाशित हो चुका है । उसमें सिद्ध किये अनुसार श्रीकृष्ण की हस्तिनापुर की शांतिवार्ता असफल होने पर सात दिन बाद आयी अमावास्या को युद्धारंभ हुआ, जब चन्द्र चित्रा में था । लड़ाई एक दिन छोड़ कर होती रही तथा कुल पैंतीस दिन चली, जिसके बाद पाण्डवों ने एक मास अशौचपालन किया । तत्पश्चात् युधिष्ठिर का राज्याभिषेक तथा पांच दिन शरशय्या-स्थित भीष्म का धर्मोपदेश होकर अन्त में माघ पूर्णिमा को रात्रिसमाप्ति समय उनका निधन हुआ । इस दरम्यान बलराम की तीर्थयात्रा युद्धारंभ के सात रोज पूर्व शुरू होकर ठीक बैयालीसवे दिन भीम-दुर्योधन गदायुद्ध के समय समाप्त हुई ।

अब वर्तमान पुस्तक में मैं युद्धपूर्व कालगणना का विवेचन दे रहा हूं। इसमें मुख्यतः वनवास आरंभ एवं अज्ञातवास समाप्ति की तिथियों का संबंध आता है। द्यूत समय की प्रतिज्ञा के अनुसार पाण्डवों ने तेरह वर्ष पूर्ण नहीं किये थे यह दुर्योधन का कहना था; तो पाण्डवों का आग्रह था कि उन्होंने वे बराबर पूर्ण किये। महाभारत कथा के इस मध्यवर्ती कालगणनात्मक विवाद का निर्णय स्पष्टही उन दो तिथियों पर निर्भर है। किन्तु महाकवि ने वे गुप्त रखी हैं, बल्कि उस विषय में उन्होंने ऐसी विलक्षण गुत्थी कर दी है कि, इस विवेचन की शुरूआत वनवास आरंभ से न कर अज्ञातवास समाप्ति से करना इष्ट है। उसके बाद पीछे जाकर द्यूत यानी वनवास की आरंभ की वास्तविक तिथि हस्तगत होगी।

कुछ पृष्ठ भूमि

इन्द्रप्रस्थ के सम्राट होते हुए भी, कौरवों के साथ द्यूत में हारने से पांडवों को बारह वर्ष वनवास और अन्त में एक वर्ष अज्ञातवास करना पडा। सती द्रौपदी भी उनके साथ रही। अतीव कष्ट के साथ पांडवों ने वनवास के बारह साल पूर्ण किये। फिर वे अज्ञातवास में चले गये; इस हेतु उन्होंने विराटनगर चुना। उनको ढूँढने के दुर्योधन के सारे प्रयास विफल हुए। उससे चिन्तित होकर उसने अपने हितैषियों से विचार-विनिमय किया। पांडवों को ढूँढने और हुशार गुप्तचर नियुक्त करने का ठहरा। किन्तु इसके साथ कौरवों के मित्र त्रिगर्तराज सुशर्मा ने एक अन्य प्रस्ताव भी रखा। उसका राजा विराट से बैर था; और इन्हीं दिनों में समाचार आया था कि विराट के महाप्रतापी सेनापति कीचक का वध हो गया। वास्तव में द्रौपदी के शीलरक्षणार्थ अज्ञातवासी भीम ने ही उसका वध किया था; किन्तु सब ओर यही प्रसृत हुआ था कि किन्हीं अज्ञात गंधर्वों द्वारा कीचक मारा गया। अतः कीचक वध के कारण विराटराज दुर्बल हो गया होगा यह सोचकर, कौरवों की सहायता से उस पर आक्रमण कर पूर्व पराजय का बदला लेने की सुशर्मा की इच्छा थी। तदनुसार

सुशर्मा ने विराट पर दक्षिण-पूर्व दिशा से हमला करना, तथा उसके प्रतीकार में राजा विराट अपनी सेना के साथ उधर गया होगा, उस हालत में दूसरे ही रोज कौरवों ने विरुद्ध दिशा से आक्रमण कर विराट की गायें हरण करना ऐसा तय हुआ।

इस प्रकार पूर्व नियोजित दिन को सुशर्मा ने विराट पर आग्नेय दिशा की ओर से आक्रमण किया। उसका सामना करने हेतु राजा विराट अपनी सारी सेना लेकर तत्काल उधर चला गया। उसके साथ युधिष्ठिर, भीम, नकुल एवं सहदेव ये (अभी अज्ञातवास रूप में ही) चार पांडव भी गये। आधी रात तक लड़ाई चली। शुरू में सुशर्मा जीतने लगा; किन्तु आखिर पांडवों के पराक्रम के कारण विराट जीत गया। फिरभी तत्काल राजधानी न लौटते उसने रातभर रणभूमि पर ही मुक्काम किया।

कौरवों का विराट पर हमला

दूसरे रोज सूर्योदय के समय कौरवों ने उत्तर दिशा से आक्रमण कर विराट का विशाल गोधन पकड़ लिया। उसका समाचार तुरन्त शहर में आया, तब वहाँ प्रमुख रूप से केवल विराटपुत्र उत्तर ही उपस्थित था। मेरा कोई कुशल सारथी नहीं, अन्यथा मैं अकेला भी सब कौरवों को पराभूत कर देता ऐसी वह बढ़ाई मारने लगा। किन्तु बृहन्नला रूपी अर्जुन ने द्रौपदी (जो अभी सैरन्ध्री वेश में थी) के द्वारा उत्तर को बताया कि, वह (बृहन्नला) एक उत्तम सारथी होकर उसके साथ जाने को तैयार है। तदनुसार उत्तर व बृहन्नला एक रथ में कौरव सेना का सामना करने निकले। सेना प्रत्यक्ष देखने पर उत्तर डर गया। किन्तु अर्जुन ने उसे पकड़ रखा, और कहा कि मैं कौरवों से लड़ूंगा तू मेरा सारथ्य कर। नगर के बाहर शमी वृक्ष पर अज्ञातवास के प्रारम्भ समय छिपाकर रखे अपने शस्त्र अर्जुन ने उत्तर के हाथ से नीचे निकाले, और तब उसे अपना स्पष्ट परिचय दिया। इसके बाद अर्जुन का रथ कौरव सेना की ओर बढ़ा।

अर्जुन प्रकटीकरण तथा दुर्योधन का आक्षेप

बृहन्नला के वेष में किसी अकेले व्यक्ति को अपना सामना करने आते देख कौरवों ने प्रथम मजाक उड़ाई, किन्तु शीघ्रही उन्हें शंका आई कि यह अर्जुन तो नहीं है ? द्रोण ने भी इस शंका की पुष्टि की ।

यह शंका व्यक्त होते ही दुर्योधन बोला कि यदि वास्तव में यह अर्जुन ही हमसे युद्ध करने आ रहा हो, तो सोने में सुगंध प्राप्त हुआ ! क्योंकि तेरहवां वर्ष अभी समाप्त नहीं हो रहा है, और यदि उसके पूर्व ही अर्जुन इस प्रकार स्वयं हमारे सामने प्रकट हो रहा हो, तो प्रतिज्ञा के अनुसार पांडवों को पुनः बारह वर्ष वनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास भुगतना पड़ेगा ।

इतने में अर्जुन का रथ और करीब आया; उसने अपना महाशंख भी बजाया । अब तो द्रोणाचार्य ने निश्चित कहा कि यह अर्जुन ही है । इस पर दुर्योधन फिर स्पष्ट शब्दों में बोला—

तेषाम् न तावन्निर्वृत्तं वर्तते तु त्रयोदशम्
अज्ञातवासो बीभत्सुरथास्माभिः समागतः ॥ विराट पर्व ४७-४.

अनिवृत्ते तु निर्वासे यदि बीभत्सुरागतः
पुनर्द्वादश वर्षाणि वने वत्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ ५

लोभात् वा ते न जानीयुरस्मान् वा मोह आविशत्
हीनातिरिक्तमेतेषां भीष्मो वेदितुमर्हति ॥ ६

"उनका तेरहवां वर्ष अभी समाप्त न होकर चल रहा है । फिर भी अर्जुन, जो अज्ञातवास में होना चाहिये, यहां हमसे युद्ध करने आया है–४. यदि निर्वास समय (जिसका अन्तिम वर्ष अज्ञातवास स्वरूप है) पूर्ण होने के पहिले ही अर्जुन इस प्रकार उपस्थित है, तो पांडवों ने फिर बारह वर्ष वन में निवास करना चाहिये–५. या तो लोभ के कारण वे (पांडव) (वास्तविक कालगणना) नहीं जान रहे हैं, या हमारे सोचने में

(हमने की कालगणना में) कुछ भ्रम आ गया हो । अतः इन बातों में (परस्पर विरोधी गणनाओं में) जो कुछ कम ज्यादा हो वह कृपया भीष्म स्पष्ट करें ।"

भीष्म का गूढ़ उत्तर

इस पर भीष्म ने दिया उत्तर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होकर महाभारत का एक गहन कूट हो गया है । उसके यथार्थ स्पष्टीकरण पर सत्य-प्रतिज्ञ पाण्डवों की, उनके प्रशंसक भीष्म की, बाद में हुए भयानक युद्ध को धर्मयुद्ध बताकर अर्जुन को तदर्थ प्रवृत्त करने वाले श्रीकृष्ण की एवं उनके गीतोपदेश की, तथा प्रमुखतः धर्माचरण का संदेश देने वाले स्वयं महाभारत की नैतिक प्रतिष्ठा आधारित है । भीष्म का उत्तर इस प्रकार था—

कलाः काष्ठाश्च युज्यन्ते मुहूर्ताश्च दिनानि च
अर्धमासाश्च मासाश्च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥ ५२-१.

ऋतवश्चापि युज्यन्ते तथा संवत्सरा अपि
एवं कालविभागेन कालचक्रं प्रवर्तते ॥ २

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात्
पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥ ३

एषामभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः ॥ ४

सर्वं यथावच्चरितं यद् यदेभिः प्रतिश्रुतम्
एवमेतद् ध्रुवं ज्ञात्वा ततो बीभत्सुरागतः ॥ ५

"कला और काष्ठा (एक कला का तीसवां भाग), मुहूर्त (एक पूरे दिन का तीसवां भाग) और दिन, तथा पक्ष और मास, और इसी प्रकार नक्षत्र और ग्रह आपस में मिल जाते हैं–१. ऋतु भी आपस में, तथा वर्ष एक दूसरे में जुड़ जाते हैं; इस प्रकार काल के विभिन्न विभाजन

द्वारा समयचक्र (निरन्तर) चलता रहता है–२. उन कालविभागों का समय (बीच-बीच में) बढ़ जाने से, तथा ग्रहों द्वारा (अपनी साधारण गति का) उल्लंघन करने से, हर पांचवे वर्ष में दो मास अधिक हो जाते हैं–३. (पांडव प्रतिज्ञा के) इन तेरह वर्षों के (इस प्रकार) पांच मास और बारह रात्रि अधिक होते हैं यह मेरा मत है–४. इन पाण्डवों ने जो जो प्रतिज्ञा की थी उस सबका ठीक पालन हुआ है; इस बात को निश्चित जानकरही तत्पश्चात् अर्जुन यहाँ (प्रकट रूप से) आया है–५।"

स्पष्ट है कि भीष्म ने दुर्योधन के प्रश्न का सीधा उत्तर न देते किसी विशेष उद्देश्य से अधिक मासों की प्रमुख चर्चा की है। भीष्म के इस उत्तर से महाभारत की युद्धपूर्व कालगणना के कई महत्वपूर्ण प्रश्न संबंधित हैं। इस उत्तर में बताये अधिक मास समय के पांच माह बारह रात्रियों का वास्तविक गणित क्या है? इस रोज, अर्थात् पाण्डवों के अनुसार अज्ञातवास समाप्त हो गया था उस दिन, नक्की कौन से मास की कौन सी तिथि थी? क्या पाण्डवों ने अधिक मास मिलाकर प्रतिज्ञा के तेरह वर्ष ठीक पूर्ण किये थे?

इन प्रश्नों के उत्तरों में ही निम्न और प्रश्नों के हल भी प्राप्त हो जावेंगे। वनवास प्रारम्भ तिथि कौनसी थी? और दुर्योधन का अज्ञातवास समाप्ति तिथि के विषय में क्या विशेष आग्रह था?

*

प्रकरण २

अधिक मास का कूट गणित

भीष्म के उत्तर का सूक्ष्म विश्लेषण प्रारम्भ करने के पूर्व अधिक मासों के विषय में कुछ स्पष्टीकरण इष्ट होगा। भारतीय पंचांग में ये अधिक मास क्यों जोड़े जाते हैं? भारतवर्ष में बारह महीनों के एक वर्ष में छः ऋतु माने गये हैं; तथा एक-एक ऋतु को स्थूल मान से दो माह दिये गये हैं। किन्तु जहाँ भारतीय मास चान्द्र है, ऋतुओं का चक्र सौर मान से होता है। यदि बारह चान्द्र मासों में ठीक एक सौर वर्ष, यानी ऋतु चक्र, पूरा होता, तो अधिक मासों की कोई आवश्यकता नहीं होती। उस हालत में दो चान्द्र मासों में एक ऋतु, अर्थात् एक सौर वर्ष का छठा भाग, बराबर बैठता। किन्तु प्रत्यक्ष में एक ऋतु दो चान्द्र मासों से कुछ अधिक चलता है; और इसी प्रकार बारह चान्द्र मासों से एक सौर वर्ष भी। यदि वसंत ऋतु ठीक चैत्र प्रतिपदा पर प्रारम्भ होता है, तो वह वैशाख के अन्त में समाप्त न होते ज्येष्ठ के भी कतिपय दिन ले लेता है। फिर उधर ग्रीष्म का आखरी अंश भी आषाढ़ पर समाप्त न होते श्रावण में प्रवेश कर जाता है। ऋतुओं की यह बढ़ोतरी क्रमशः एकत्रित होते-होते, कुछ समय बाद (जिसकी भीष्म के उत्तर में कूट रूप में दी अवधि आगे स्पष्ट की है) एक पूरा ऋतु अपना नियमित स्थान छोड़कर दो चान्द्र मास आगे खसक जाता है। जैसे, ग्रीष्म ऋतु ज्येष्ठ आषाढ़ में आने के बजाय श्रावण भाद्रपद में अनुभव होता है। तब वहाँ दो अधिक मास जोड़कर उसमें वर्षा ऋतु रखने से फिर शरद ऋतु बराबर कार्तिक मास से प्रारम्भ होता है। इस प्रकार इन अधिक मासों का प्रयोजन चान्द्र मास और सौर ऋतु (तथा सौर वर्ष) इनमें समय-समय पर होने वाला अन्तर

हटाना है । जहाँ भीष्म दो अधिक मास एक साथ जोड़ने की बात करते हैं, वर्तमान भारत में एक-एक अधिक मास अलग-अलग कालांतर से जोड़ा जाता है ।

अब भीष्म ने दुर्योधन को दिये उत्तर का विचार करें। उसके तीसरे श्लोक में हर पांच वर्षों के संबंध में दो अधिक मासों का अनुपात दिया होकर, चौथे श्लोक में इस आधार पर तेरह वर्षों के संबंध में पांच माह बारह रात्रियों का अधिक मास समय बताया है । यह एक कूट बन बैठा है । क्योंकि गणित करने पर उक्त अनुमान से तेरह वर्षों का अधिक मास समय $\frac{१३\times२}{५} = \frac{२६}{५} = ५\frac{१}{५}$ = पांच माह और (करीब) छः दिन आता दिखता है । किन्तु भीष्म वह समय पांच माह और बारह रात्रि बताते हैं। यह कैसा ? इसके स्पष्टीकरण में व्यक्त कुछ प्रमुख मत इस प्रकार हैं ।

संस्कृत भाष्य

महाभारत के प्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य नीलकंठ के अनुसार चान्द्र तथा सौर वर्ष के अंतर के कारण तेरह सौर वर्ष पूर्ण करने हेतु तेरह चान्द्र वर्षों में पाँच माह दो दिन सैंतीस नाडी पैंतालिस पल और पन्द्रह अक्षर की वृद्धि करनी पड़ती है; और उसमें भी नौ दिन तथा कुछ अंशों की विशेष वृद्धि मानकर कुल पाच माह बारह रात्रि (यानी दिन) का हिसाब बैठता है । वे लिखते हैं, "तत्र प्रायेण ज्योतिर्विदः सौर संवत्सरानुरोधेनैव वर्षप्रवेशादिकं कुर्वन्ति । स्मार्ते वर्धापनादौ तु चान्द्रेणेति विशेषे सत्यपि यदा एतयोरान्तकालिकः सावनाब्दो गण्यते तदा सौरगता वृद्धिस्तत्र गण्यते । एवं गणनायां क्रियमाणायां त्रयोदशस्वब्देषु पञ्च चान्द्रमासाः द्वे दिने सप्तत्रिंशन्नाड्यः पञ्चचत्वारिंशत्पलानि पञ्च दशाक्षराणि च । तथा च किंचिदधिकानि नवदिनान्यवधिपूर्तेरधिकानि जातानि ज्योतिषां नक्षत्राणां व्यतिक्रमात् सूर्येण चन्द्रेण च लङ्घनात् उपजायतः अधिकौ भवतः ।" किन्तु यदि इस प्रकार पाच माह और बारह दिन गिनना हो, तो भीष्म ने दिये अनुपात का क्या ?

इसके विपरीत चतुर्भुज मिश्र 'द्वादश क्षपाः' का अर्थ छः पूरे दिन करते हैं, और इसके लिये दो समर्थन देते हैं । एक यह कि, 'द्वादशक्षपाः' को ('शाकप्रिय पार्थिवः शाकपार्थिवः' के समान) मध्यमपद लोपी समास मानकर, उसके बीच 'अर्ध' शब्द रख लिया जावे, जिससे 'द्वादशार्धक्षपाः' अर्थात् छः रात्रि (यानि छः दिन) ऐसा अर्थ होगा । या फिर, द्वादशक्षपाओं का आशय छः अहोरात्र (पूर्ण दिवस) लिया जावे । "द्वादशार्ध क्षपाः द्वादश क्षपाः । शाकपार्थिवादित्वात् षडहोरात्रा इत्यर्थः । यद्वा क्षपा शब्दो मुख्य गौणवृत्या रात्रौ दिने च वर्तते तेन षड्दिनानि षड्रात्रयश्चेति मिलित्वा द्वादशक्षपाः । न तु द्वादशाहोरात्रा इति ।" जहाँ नीलकंठ 'द्वादशक्षपाः' से बारह अहोरात्र लेते हैं, चतुर्भुज मिश्र उसका स्पष्ट विरोध कर केवल छः अहोरात्र (पूरे दिन) लेते हैं । उससे भीष्म ने दिया अनुपात सार्थक होता दिखता है; किन्तु क्या भीष्म स्वयं छः दिन ऐसा ही नहीं कह देते ? उन्होंने बारह रात्रि क्यों कहा ? और क्या संख्या में भी इस प्रकार मध्यमपद लोपी समास माना जा सकता है ? किसी को यदि निश्चित संख्या में वचन देकर बाद में उसके मध्य में 'अर्ध' या 'चतुर्थ' पद अध्याहृत माना जाय तो अनर्थ नहीं होगा ? स्वयं महाभारत में वनवास के 'द्वादशवर्षाणि' को ही पाण्डव यदि इस प्रकार 'द्वादशार्ध वर्षाणि' अर्थात् छः वर्ष मान लेते तो क्या वह उचित होता ?

'विरोधार्थभंजिनी' भाष्य में 'क्षपा' का अर्थ पूर्ण दिवस कर उस अधिक मास समय का हिसाब दो प्रकार से बताया है ।(अ) चान्द्रमानानुसारः—प्रति पांच साल के दो अधिक माह इस प्रकार तेरह वर्षों के पांच माह छः दिन लेकर, इस पाच माह के भी (प्रतिमास एक अधिक दिन के हिसाब से) और पांच दिन जोड़ने से पांच माह ग्यारह दिन होते हैं; इनमें वर्तमान दिन का एक और दिवस मिलाकर पांच माह बारह दिन हो सकते हैं । "तथाच त्रयोदश वर्षैः पञ्च मासाः षड्दिनानि च भवन्ति । एवमधिकपञ्चमासैः पञ्चदिनानि । एवं वृद्धेरेकादश-

दिनानि । तेन वर्तमानदिनं परिगृह्य........" (अन्तिम वाक्यांश स्पष्ट नहीं है)। (आ) सावनमानसेः—सावन वर्ष मान से सौर वर्ष में छः दिन अधिक होते हैं; अतः तेरह सौर वर्ष हेतु तेरह सावन वर्षों में ७८ दिन यानी दो माह अठारह दिन अधिक जोड़ना आवश्यक होता है। फिर इसमें से वर्तमान दिन छोड़कर दो माह सत्रह दिन रहते हैं। उसका मेल बैठाने हेतु ये भाष्यकार मूल संस्कृत पाठ में 'मासाः' के स्थान पर 'मासौ' पढ़कर, 'पञ्च' का संबध 'द्वादश' के साथ 'क्षपाः' से जोड़ते हैं। इस प्रकार 'पांच माह बारह रात्रि' को ही बदलकर 'दो माह सत्रह रात्रि' करना चाहते हैं। "सावने वर्षे दिनषट्कवृद्धिः। तथा च पंचमे पंचमद्वये द्वौ मासौ भवतः वर्षत्रयेण च अष्टादशदिनानि। तेन वर्तमान दिनं परित्यज्य द्वौ मासौ सप्तदश दिवसा अधिकास्तदाह—एषामिति। मासौ अत्र स्तः इति मासा मासद्वययुताः पञ्च च द्वादश क्षपाः।" किन्तु यदि इस प्रकार 'मासाः', जो अनेक वचनी रूप होकर दो से अधिक मास दर्शाता है, शब्द को 'मासौ' (जो द्विवचन का रूप है) पढ़ना हो, तो महाभारत के किसी भी पंक्ति का चाहे जो अर्थ लगाया जा सकता है।

'विषमपादविवरण' भाष्य में 'पंचमे पंचमे वर्षे' को 'पंचमे मासे पंचमे वर्षे' मानकर कहा है कि, 'मासे' का लोप कविता की दृष्टि से लिया जावे। "सौरमासापेक्षया कालवृद्ध्या पंचमे वर्षे पंचमे मासे द्वौ मासावधिकौ जायेते....'पंचमे पंचमे वर्षे' इति एकत्र पंचमे वर्षे पंचमे (अन्यत्र ?) मासे छान्दसत्वान्मासशब्दलोप इत्यर्थः"। अन्त में, 'लक्षाभरण' भाष्य में (चतुर्भुज मिश्र के एक पर्याय के अनुरूप) 'क्षपा' का अर्थ आधा दिन कर 'द्वादश क्षपाः' याने छः पूर्ण दिन ऐसा कहकर, भीष्म का आशय इस प्रकार बताया है, "क्षपापदेन त्रिशत्घटिकात्मकम् अर्धदिनम् उच्यते। सम्पूर्णाः षड् दिवसा इति यावत्।"

कुछ आधुनिक स्पष्टीकरण

श्री चि.वि. वैद्य लिखते हैं कि, व्यास के इस कूट गणित का वास्तविक आशय गूढ होकर किसी प्रकार स्पष्ट नहीं हो रहा है। उनके मराठी

वाक्यों का ('महाभारताचा उपसंहार' पृ. १२८) हिंदी रूपांतर यहाँ प्रस्तुत है। "यह मानना ही पड़ता है कि महाभारत में भिन्न-भिन्न स्थानों पर जो संख्याएँ दी हुई हैं, उनमें प्रायः कुछ गूढ या गुह्य बात होती है.... अधिक मासों का हिसाब लगाने में प्रति पांच साल से दो माह इस हिसाब से तेरह वर्षों में पांच माह और बारह रात्रि यह भीष्म के वचन में दिया हिसाब बराबर बैठता नहीं। यदि पांच साल से दो माह, तो तेरह वर्षों पर $\frac{13 \times 2}{5} = 5\frac{1}{5}$ ऐसा हिसाब होता है; अर्थात् पांच माह और छः दिन यह उत्तर आता है। किन्तु भीष्म यहाँ 'त्रयोदशानां वर्षाणां पंच च द्वादश क्षपाः' कहते हैं। यह कैसा ? बारह रात्रि यानी छः दिन ऐसा अर्थ करना सम्भव है, किन्तु वह कुछ तो भी है।"

नागपुर के डॉ. के. ल. दप्तरी तो यहाँ तक कह गये हैं कि इस श्लोक में महाभारतकार की गणित की कुछ गलती भी हो सकती है! वे लिखते हैं—

"This third verse ls followed by the verse एषामभ्यधिका ......This is said to be inconsistent with the third verse for, at the rate given in the third verse, there ought to be five intercalary months and six *Tithis* more in thirteen years. This inconsistency cannot take away or nullify the import of the third verse—namely that in the days of the *Mahabharata*, the Indians took two intercalary months in five years; it would at the most prove, that some mistake was made in the calculation and nothing more. However this inconsistency disappeers if by *kshapa* (क्षपा) we understand half a day......" (**The Astronomical Method and its Application to the Chronology of Ancient India, P. 14,** footnote).

अट्ठावन पर दो, साठ पर नहीं !

इस सारे संदर्भ में इस लेखक के अनुसार उस गणित का उत्तर प्रस्तुत है ।

....'पंचमे पंचमे वर्षे' शब्द प्रयोग में सप्तमी विभक्ति है । इसका सरल अर्थ 'प्रत्येक पांचवे साल में' है; न कि पांचवे साल के बाद । यदि यहां पंचमी विभक्ति होती तो वैसा आशय हो सकता था । महाभारत में अन्यत्र पंचमी का उपयोग कर 'बाद' का आशय दर्शाया गया है । उदाहरणार्थ, हस्तिनापुर की असफल शांतिवार्ता से वापिस उपप्लव्य लौटते समय श्रीकृष्ण ने कौरवों को कर्ण के द्वारा युद्धारम्भ तिथि का सन्देश भेजते हुए कहा था—

सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति
संग्रामो युज्यतां तस्याम् तामाहुः शक्रदेवताम् ।। उद्योग पर्व,१४२।१८

"(आज से) सात दिन बाद अमावास्या आ रही है जिसकी देवता इन्द्र बताई गई है; उस अमावास्या पर युद्ध आरम्भ किया जावे ।" यहाँ 'सातवे दिन' या 'सातवे दिन पर' ऐसा आशय न होकर सातवे दिन बाद, सातवां दिन समाप्त होने पर, यह अर्थ है । और उसी से युद्धारम्भ की तिथि एवं चन्द्रादि की स्थिति बराबर निश्चित होती है; जैसा मैंने 'महाभारत युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य' पुस्तक में बताया है ।

अतः भीष्म के वचनानुसार आने वाले दो अधिक मास पांचवा साल समाप्त होने के बाद न आते पांचवे साल में आते थे । एक अधिक मास की जोड़ी के पश्चात अट्ठावन मास (न कि साठ) बीतने पर दूसरी जोड़ी आती थी । इसके विपरीत उपरोक्त भाष्यकार साठ चान्द्र मासों पर दो अधिक मास इस प्रकार गणित करते रहे, और इसीलिये महाकवि ने ठीक दिया पांच माह बारह रात्रि का उत्तर नहीं पा रहे थे ! यदि हमने बराबर गणित किया तो वह इस प्रकार होगा—

५८ चान्द्रमास = २ अधिक मास

∴ (१३ × १२ =) १५६ चान्द्रमास = $\frac{१५६ \times २}{५८}$ = ५$\frac{११}{२९}$ अधिक मास

अब हम एक महीने के तीस दिन (या सवा उनतीस, साढ़े उनतीस आदि) लेते हैं, तो ११/२९ मास के बराबर ग्यारह पूर्ण दिन और कुछ घटियाँ आती हैं; मतलब बारहवें दिन का प्रारम्भ हो जाता है । यह प्राचीन भारतीय प्रथा प्रसिद्ध ही है कि सूर्य ने उदय के समय किसी दिन को जिस अवस्था में देखा हो, उसी अवस्था में धर्म कार्य के लिये वह पूरा दिन माना जाता है । जैसे, जिस दिन सूर्योदय पर एकादशी की तिथि हो, उस पूरे दिन (रात्रि समाप्ति तक) उपवास मनाया जाता है, भले ही उस सूर्योदय के कुछ समय बाद एकादशी समाप्त होकर द्वादशी प्रारम्भ हो जावे । तात्पर्य, इस सन्दर्भ में एक दिन के किसी भी अंश को पूरा दिन गिना जाता है । अतः बारहवें दिन के सूर्योदय पर प्रतिज्ञाकाल संबद्ध अधिकमास की अवस्था होने से, पाण्डवों ने वह पूरा दिन (रात्रि समाप्ति तक) उसी अवस्था में गिना । इसीलिये 'क्षपा' यानी रात्रि शब्द का प्रयोग कर भीष्म ने (याने महाभारतकार महाकवि ने) तेरह साल पर अधिकमासों के कुल पांच माह और बारह दिन बराबर गिन कर बताये ।

विभक्ति के सूक्ष्म प्रयोग

यदि गणित इतना ही सरल था तो आज तक यह कूट कैसे बना रहा ? महाकवि ने यह खूबी की कि, प्रतिज्ञा का कुल समय बताने में तो 'त्रयोदशानां वर्षाणाम्' में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया, किन्तु अधिक मासों का अनुपात बताते समय 'पंचमे पंचमे वर्षे' में सप्तमी का उपयोग किया है ! परिणाम यह हुआ कि, जहाँ 'त्रयोदशानां वर्षाणाम्' यह अधिक मास रहित तेरह चान्द्र वर्षों का (१५६ मास) मूल काल हैं, वहां 'पंचमे पंचमे वर्षे' यह अधिक मास सहित कुल काल है । यदि दोनों स्थान पर एक ही विभक्ति होती, तो अभीतक के गणित बराबर होते । मान लीजिये, ९८ रुपयों पर दो रुपये ब्याज है; अब यदि पूछा जावे कि एक सौ रुपयों 'में' दो रुपये ब्याज होने पर पांच सौ रुपयों 'का' ब्याज कितना, तो दस रुपये उत्तर गलत होगा । क्योंकि, यहाँ पांच सौ रुपये

मूल धन होकर इसके साथ षष्ठी का प्रयोग भी किया गया है; किन्तु सौ रुपये यह मिश्रधन होकर यह उसकी सप्तमी विभक्ति से स्पष्ट है। मूल धन के स्थान पर चान्द्र वर्ष, ब्याज के रूप में अधिक मास तथा मिश्र-धन के स्थान पर सौर वर्ष मान लीजिये, तो महाभारत के इस कूट का हल तुरन्त मिल जायगा।

यह तो स्पष्ट है कि, यदि पूरे साठ माह के बाद अधिक मास आते, तो शुरू में जिस माह के बाद अधिक मास आये थे, हमेशा हर पांच साल बाद उसी नाम के माह बाद वे आया करते। यथा पंचांग रचना के शुरू में यदि आषाढ के बाद अधिक मास माने गये हो, तो हमेशा पांच साल से वे आषाढ़ के ही बाद आते रहते। किन्तु ऐसा होता तो उनके पूर्व मास का नाम ज्योतिष विषयक ग्रंथों में स्पष्ट मिल जाता। इसके विपरीत ५८ माह के बाद अधिकमास द्वय मानने से उसका स्थान हर समय बदलता था। अब सवाल रहा कि, यदि अधिकमास द्वय पांचवे वर्ष के अन्दर होना है, तो वह ५८ माह के बाद ही क्यों ? ४९ से लेकर ५७ माह तक किसी संख्या को वहाँ क्यों नहीं माना जावे ? इसका उत्तर है कि ५८ की संख्या लेने से ही भीष्म का उपरोक्त हिसाब सही बैठता है। और फिर इस संख्या का संबंध चान्द्र वर्ष और सौर वर्ष के अन्तर से तो है ही।

एक प्रश्न पर विचार

यहाँ एक और प्रश्न उठाया जा सकता है। यदि ५८ चान्द्रमासों पर दो अधिक मास मानते हैं, तो क्या इसका मतलब यह नहीं होगा कि पांच वर्षों में नियमित मास ५८ ही आते हैं ? फिर शेष दो नियमित मास कहाँ जायेंगे ? हर वर्ष में, तथा अधिक मास वाले वर्ष में भी, चैत्र से फाल्गुन तक बारह नियमित मास तो आना ही चाहिये; इनके अलावा दो अधिक मास आयेंगे। इस प्रकार पांच साल में ६०+२=६२ मास आने चाहिये; ५८+२ यानी ६० कैसे ?

इसमें शंका नहीं कि, कोई भी लगातार पांच वर्ष लेने पर उनमें साठ नियमित और दो अधिक मास आयेंगे। किन्तु बात इतनी ही है कि अधिक मास द्वय वहीं पर जुड़ेगा, जहाँ उसके पूर्व के अधिक मास द्वय से अट्ठावन मास पूर्ण हुए हों। फिर भी जिस संवत वर्ष में अधिक मास जुड़ेंगे वह इन अधिक मासों पर समाप्त हो जायगा ऐसा नहीं; उस वर्ष के जो नियमित मास बचे होंगे वे व्यतीत होने पर ही वह संवत् वर्ष समाप्त माना जावेगा। इस प्रकार पांच साल में ६२ मास भी आते हैं, और साथ में ५८ माह के बाद दो अधिक मास भी जुड़ सकते हैं। आगे दिये उदाहरण से यह स्पष्ट होगा।

हम कोई भी एक संवत् वर्ष लेकर उसके चैत्र मास के साथ ही वसंत ऋतु का प्रारम्भ मान लें। उसे संवत् वर्ष क्रमांक १ कहा जावे। अब हम ५८ मास गिनें—संवत् वर्ष क्रमांक १ के (चैत्र से फाल्गुन) बारह मास, उसके बाद वर्ष क्र. २, ३, ४ के हर वर्ष के बारह मास, और उसके पश्चात वर्ष क्र. ५ के चैत्र से पौष तक दस मास। उस पौष मास के बाद दो अधिक मास जुड़ेंगे। किन्तु संवत वर्ष क्र. ५ की समाप्ति वहाँ न मानी जाकर उनके बाद फाल्गुन के अन्त पर ही मानी जायगी।

इस अधिक मास द्वय के बाद फिर अट्ठावन मास बीतेंगे—वर्ष क्र. ५ के दो (माघ व फाल्गुन), तथा वर्ष क्र. ६, ७, ८, ९ के कुल ४८ मास, एवं क्र. १० के चैत्र से कार्तिक तक आठ मास। उस कार्तिक के पश्चात फिर दो अधिक मास आयेंगे। किन्तु वर्ष क्र. १० वहीं समाप्त न होकर चार माह बाद फाल्गुन के साथ ही समाप्त होगा।

इस प्रकार ५८ चान्द्र मासों के बाद दो अधिक मास मानने से हर समय अधिक मास द्वय का स्थान दो-दो माह पीछे जायगा। एक द्वय पौष के बाद आया, तो दूसरा द्वय कार्तिक के बाद, तथा इसके बाद का भाद्रपद के पश्चात, इस क्रम से ये द्वय आते रहेंगे।

संक्षेप में यह इस प्रकार दर्शाया जा सकता है ।

संवत वर्ष क्र. १:—चैत्र से फाल्गुन = १२ मास
२:— —,,— = १२
३:— —,,— = १२
४:— —,,— = १२
५:—चैत्र से पौष = १० }
फिर दो अधिक मास = (२) }
माघ, फाल्गुन = २ }
६:—चैत्र से फाल्गुन = १२
७:— —,,— = १२
८:— —,,— = १२
९:— —,,— = १२
१०:— चैत्र से कार्तिक = ८ }
फिर दो अधिक मास = (२) }
मार्गशीर्ष, पौष, माघ, }
फाल्गुन = ४ }
११:— चैत्र से फाल्गुन = १२
१२, १३, १४—,,— = ३६
१५:— चैत्र से भाद्रपद = ६ }
फिर दो अधिक मास = (२) }
आश्विन से फाल्गुन = ६ }

एक ध्यान देने की बात

इस उदाहरण को और आगे चलाने से दिखेगा कि, कभी कभी दो अधिक मास द्वयों के बीच वही ५८ मास का अन्तर होते हुए भी इनके संवत वर्षों में मात्र चार का ही अन्तर आयग । यह इस प्रकार बताया जा सकता है ।

संवत् वर्ष क्र. १६, १७, १८, १९:— = ४८ मास
क्र. २०:— चैत्र से आषाढ़ = ४ }
फिर दो अधिक मास = (२) }
श्रावण से फाल्गुन = ८ }
क्र. २१, २२, २३, २४:— = ४८
क्र. २५:— चैत्र, वैशाख = २ }
फिर दो अधिक मास = (२) }
ज्येष्ठ से फाल्गुन = १० }
क्र. २६, २७, २८, = ३६
क्र. २९:— चैत्र से फाल्गुन = १२)
फिर दो अधिक मास = (२))

यदि यह अधिक मास द्वय वर्ष क्र. ३० में माना गया, तो भी इसके बाद का द्वय क्र. ३४ में आवेगा । सारांश, कभी न कभी एक बारी ऐसी आवेगी, जिसमें दो अधिक मास द्वयों में हमेशा मुजब अट्ठावन मास का अन्तर होते हुए भी, उनके संवद् वर्ष क्रमांकों में केवल चार का अन्तर होगा । हमारे प्रस्तुत विवेचन में यह बात महत्व की होने से उसकी ओर यहाँ विशेष ध्यान दिलाया है ।

दो अधिक मास एक साथ

इस विषय पर मेरे व्याख्यानों में एक प्रश्न यह भी उठाया गया था कि, यद्यपि ५८ चान्द्रमासों पर दो अधिक मासों का अनुपात मान लिया, तो भी क्या यह आवश्यक है कि, उन दिनों में दोनों अधिक मास एक साथ ही आते थे ? जिस प्रकार वर्तमान समय में बीच-बीच में एक अधिक मास रखा जाता है, उस समय भी २९ माह बाद एक अधिक मास जोड़ते थे ऐसा मानने में क्या आपत्ति है ?

यह ठीक है कि, अट्ठावन मास रुकने से ऋतुओं की विसंगति बहुत बढ़ जाती है; और इसी लिये दो अधिक मासों की प्रथा छोड़कर बाद में भारतवर्ष में एकेक अधिक मास जोड़ना प्रचलित हुआ होगा । सवाल

इतना ही है कि, महाभारतकार के सामने कौरव पांडवों के सन्दर्भ में कौनसी प्रथा थी ?

यदि पांच साल में दो अधिक मास अलग-अलग आने की बात कहना थी, तो भीष्म के उत्तर में वैसा उल्लेख आ सकता था । किन्तु महाभारतकार 'पंचमे पंचमे वर्षे' अर्थात् प्रति पांचवे वर्ष में ऐसा साफ कहते हैं । अन्यथा वे 'पंच-पंच वर्षेषु' अर्थात् प्रति पांच वर्षों में इतना ही कहते । वर्ष का अनुक्रमांक स्पष्ट बताता है कि, दोनों अधिक मास पांचवे साल में ही एक साथ आते थे । 'पंच' और 'पंचम' का भेद महत्वपूर्ण है ।

इसके अलावा महाभारतकार पांच संवत्सरों की एक इकाई मानते थे यह बताने वाला एक श्लोक भी है । युधिष्ठिरादि पांच पांडव बंधुओं का वर्णन करते हुए कहा है—

अनुसंवत्सरं जाता अपि ते कुरुसत्तमाः
पाण्डुपुत्रा व्यराजन्त पंच संवत्सरा इव ।। आदिपर्व १२३।२२

"यद्यपि कुरुकुलभूषण वे (पांच) पांडुपुत्र एक-एक साल बाद पैदा हुए थे, वे उसी प्रकार (सब एक समान) शोभायमान दिखते थे, जैसे पांच संवत्सर (जो एकेक साल बाद आने पर भी दिन संख्या की दृष्टि से समान होते हैं)।" वेदांग ज्योतिष में इनके संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर अनुवत्सर और इद्वत्सर ये भिन्न नाम भी मिलते हैं ।

क्या महाभारत की इस अधिक मास गणना को किसी अन्य प्राचीन ग्रन्थों में आधार मिलता है ? एक स्थान पर महाकवि ने वृद्ध गर्ग नामक एक महान ज्योतिषाचार्य का उल्लेख किया है । बलराम की तीर्थयात्रा के वर्णन में वैशंपायन कहते हैं—

गर्गस्त्रोतो महातीर्थमाजगामैककुण्डली
तत्र गर्गेण वृद्धेन तपसा भावितात्मना ।। शल्य पर्व, ३७।१४
कालज्ञानगतिश्चैव ज्योतिषां च व्यतिक्रमः
उत्पाता दारुणाश्चैव शुभाश्च जनमेजय ।। १५

सरस्वत्याः शुभे तीर्थे विहिता वै महात्मना
तस्य नाम्ना च तत् तीर्थं गर्गस्रोत इति स्मृतम् ।। १६

"राजा जनमेजय, तत्पश्चात् एककुंडलधारी बलराम, महातीर्थ गर्गस्रोत पर आये । वहाँ सरस्वती के किनारे उस पवित्र स्थान पर महामना वृद्धगर्गजी ने तपस्या द्वारा काल का स्वरूप एवं उसकी गति, आकाशस्थ ग्रहनक्षत्रों द्वारा (अपनी नियमित अवस्था का कभी-कभी होने वाला) उल्लंघन, भीषण अपशकुन एवं शुभ लक्षण आदि का ज्ञान प्राप्त किया था । उन्हींके नाम से वह तीर्थ गर्गस्रोत कहा जाता है ।" इसमें आये 'कालज्ञानगति' तथा 'ज्योतिषां च व्यतिक्रमः' शब्दों का भीष्म के उक्त उत्तर से स्पष्ट साम्य है । इन्हीं 'वृद्ध गर्गाचार्य' का कोई ग्रन्थ उस समय प्रमाण माना जाता होगा । महाभारत में जो स्थान-स्थान पर दारुण उत्पात तथा शुभ शकुनों का वर्णन है, उसका आधार भी इन्हीं ज्योतिषाचार्य वृद्ध गर्ग का विवेचन होना चाहिये । वराहमिहिराचार्य ने भी अपने 'बृहत्संहिता' ग्रन्थ में सप्तर्षियों की गति के संबंध में 'वृद्ध गर्ग' का उल्लेख किया है । दुर्भाग्य से उनकी रचना अब उपलब्ध नहीं । श्री शं. बा. दीक्षित ('भारतीय ज्योतिषशास्त्र इतिहास' मराठी, पृ. १०९) लिखते हैं कि दो अधिक मास एक साथ जोड़ने की पद्धति वेदांग ज्योतिष की है ।

*

प्रकरण—३

अज्ञातवास समाप्ति का दिन

इस प्रकार भीष्म के इस गूढ़ उत्तर का एक अंश स्पष्ट किया गया। अब उसके शेष कूट का विचार करने के पूर्व, जिस दिन अर्जुन अज्ञातवास से प्रकट होकर भीष्म का दुर्योधन से यह संभाषण चल रहा था वह निश्चित करना आवश्यक है।

तिथि, पक्ष एवं ऋतु

स्वयं दुर्योधन ने अपने भाषण में उस दिन की तिथि अष्टमी बताकर समय प्रातःकाल बताया है।

तेषां भयाभिभूतानां तदस्माभिः प्रतिश्रुतम्
प्रथमं तैर्ग्रहीतव्यं मत्स्यानां गोधनं महत्
सप्तम्यामपराण्हे वै तथा तैस्तु समाहितम् ॥ विराटपर्व ४७-१०
अष्टम्यां पुनरस्माभिरादित्यस्योदयं प्रति
इमा गावो ग्रहीतव्या गते मत्स्ये गवां पदम् ॥ ११

"(विराट राजा के कारण) भयभीत हुए उन्हें (यानी त्रिगर्तों को, जिनका अधिपति सुशर्मा है) हमने आश्वासन दिया था कि, प्रथम (उधर से) उन्होंने सप्तमी के अपराण्ह प्रहर में मत्स्यों का (विराट का) विशाल गोधन हरण करना, जैसा उन्होंने किया भी; और फिर जब मत्स्य नरेश उन गायों (को छुड़ाने हेतु उन) के पीछे गये होंगे, तब अष्टमी को सूर्योदय पर हमने (इधर से आक्रमण कर) इन गौओं को पकड़ लेना।"

इसके अलावा इन्हीं दो तिथियों का उल्लेख, उनके कृष्ण पक्ष सहित, वैशंपायन ने भी अलग से किया है।

ते स्म गत्वा यथोद्दिष्टां दिशं वन्हेर्महीपते
संबद्धाः रथिनः सर्वे सपदाता बलोत्कटाः ॥ ३०-२५
प्रति वैरं चिकीर्षन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः
आदातुं गा सुशर्माथ कृष्णपक्षस्य सप्तमीम् ॥ २६
अपरे दिवसे सर्वे राजन् सम्भूय कौरवाः
अष्टम्यां ते न्यगृण्हन्त गोकुलानि सहस्रशः ॥ २७

"राजन् (जनमेजय), (विराट राजा से) पूर्व बैर का बदला चुकाने की इच्छा से (उसकी) गायें छीनने के उत्सुक, कवचादि से सुसज्ज, बलवान, महाशक्तिसम्पन्न वे सब (त्रिगर्तदेशीय) रथी एवं पैदल सैनिक सुशर्मा को आगे कर गायें हरण करने पूर्वनियोजित (आग्नेय) दिशा में कृष्ण पक्ष की सप्तमी को चले जाने पर—२५, २६ दूसरे दिन अष्टमी को सब कौरवों ने मिलकर (विराट राज्य पर दूसरी ओर से हमला कर) सहस्रों गौवों के झुण्ड पकड़ लिये—२७।" इस प्रकार अर्जुन प्रकटीकरण के उस दिन कृष्ण (वद्य) पक्ष की अष्टमी थी।

अब उस समय ऋतु ग्रीष्म चल रहा था यह भी महाभारतकार ने बता दिया है। अर्जुन को प्रकट होते देख कौरवों में जो कालगणना का विवाद खड़ा हुआ उसे देख कर्ण ने दुर्योधन से कहा—

अदेशिका महारण्ये ग्रीष्मे शत्रुवशं गताः
यथा न विभ्रमेत् सेना तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ४७-२३

"इस समय हम विदेश में तथा घने जंगल में हैं; इधर ऋतु ग्रीष्म है तथा हम शत्रु के निकट खड़े हैं। अतः (भीष्म द्रोण की पांडव प्रशंसा युक्त बातों पर ध्यान न देकर) इस वक्त ऐसी नीति अपनाई जावे जिससे हमारी सेना में भ्रम एवं घबराहट न फैले।"

किन्तु मास कौन सा ?

तिथि, समय, पक्ष, ऋतु आदि सब बताने के बावजूद महाकवि ने माह क्यों नहीं बताया ? यहाँ उन्होंने एक विलक्षण कूट रखा है, जिसके

वास्तव उत्तर पर वनवास प्रारम्भ तिथि, पांडवों ने प्रतिज्ञा समय पूर्ण किया था या नहीं, आदि प्रश्नों का समाधान निर्भर है ।

इस माह के विषय में कुछ प्रमुख मत प्रस प्रकार हैं । नीलकंठ उसे वैशाख मानते हैं । चतुर्भुज मिश्र तथा विरोधार्थभंजिनी भाष्य वह ज्येष्ठ बताते हैं । अर्जुन मिश्र आषाढ़ कहते हैं । श्री चिं. वि. वैद्य भी उसे ज्येष्ठ मानकर लिखते हैं कि, मूल महाभारत में इस माह का उल्लेख होगा, किन्तु बाद में वह श्लोक लुप्त हो गया होगा ('महाभारताचा उपसंहार', मराठी, पृ. ११०-१११) ।

कुछ और संकेत

इस संदर्भ में हमें वह मास निश्चित करना है । किन्तु उसके पूर्व कुछ और मार्मिक संकेतों पर ध्यान देना आवश्यक है । यद्यपि अर्जुन कौरवों के सामने कृष्ण अष्टमी को प्रकट हुआ था, द्रौपदी सहित सभी पांडव विराट दरबार में उसके तीसरे रोज एक साथ प्रकट हुवे । कौरवों को पराजय कर नगर लौटते समय अर्जुन ने उत्तर से कहा कि यद्यपि अब तुझे पता चल गया है कि, पांडव तेरे पिता के पास ही रह रहे हैं,फिर भी फिलहाल तू तेरे पिता को उनका परिचय न देते हुए इतना ही कहना कि स्वयं तेने ही कौरवों को पराजित कर गायें छुड़ा लाई हैं (६७-६, १०) राजकुमार उत्तर ने अर्जुन की इच्छानुसार उसी रोज पांडवों को जाहीर नहीं किया; किन्तु विजय का श्रेय स्वयं को न देते किसी 'देवपुत्र' को दिया । फिर तीसरे रोज पांडव स्वयं, द्रौपदी के साथ, विराट के दरबार में अपने वास्तविक रूप में उपस्थित हुए ।

ततस्तृतीये दिवसे भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः
स्नाताः शुक्लांवरधराः समये चरितव्रताः ।। ७०-१.
विराटस्य सभां गत्वा भूमिपालासनेष्वथ
निषेदुः पावकप्रख्याः सर्वे धिष्ण्येष्विवाश्रयः ।। ३

"उसके तीसरे रोज वे पांच पाण्डव भाई, सुस्नात एवं श्वेत वस्त्र परिधान किये तथा जिन्होंने प्रतिज्ञानुसार वनवास–अज्ञातवास का व्रत नियत समय तक पालन किया था—१, राजा विराट के दरबार में उपस्थित होकर राजोचित आसनों पर बैठ गये; उस समय वे पास-पास यज्ञवेदियों पर स्थित प्रज्वलित (पांच) अग्नि ज्योतियों के समान तेजस्वी दिख रहे थे—३ ।"

मूल शत्रु कौरवों ने ही कृष्ण अष्टमी को अर्जुन को रणभूमि पर पहिचान लेने के बाद, विराट दरबार में प्रकट होने पांडवों ने दो दिन और लेने में क्या तुक था ? एक भाष्यकार का विचार है कि पांडवों के अनुसार तेरह वर्ष वस्तुतः कृष्ण दशमी को ही समाप्त हो रहे थे । किन्तु ऐसा होता तो अर्जुन दो दिन पूर्व कौरवों के सामने कैसे प्रकट हो सकता था ? द्यूत समय की शर्त यह थी कि पांडवों में से कोई एक भी नियत समय से पूर्व पहिचाना जाता है तो सब पांडवों को फिर बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करना होगा । उधर चतुर्भुज मिश्र लिखते हैं कि तत्कालीन कुछ परिपाटी के अनुसार दशमी को शुभ मुहूर्त माना गया होगा । "यच्च ते दिनद्वयानन्तरं विराटं प्रति युधिष्ठिरादयः प्रकटीबभूवुः तत्कयापि परिपाटया शुभदिनादौ स्वप्रकाशार्थमिति "

किन्तु इसका रहस्यमय कारण यह दिखता है कि, उस अष्टमी के रोज द्रौपदी रजस्वला होने से पांडवों के साथ सभा में आकर नहीं बैठ सकती थी ! और बिना द्रौपदी के, जिसने तेरह वर्ष एकनिष्ठा से उनका भयानक वनवास-अज्ञातवास में साथ दिया था, पांडव विराट दरबार में कैसे प्रकट रूप से बैठ सकते थे ? अर्थात् महाकवि ने यह सूक्ष्म संकेत दिया है कि, जिस प्रकार वनवास प्रारम्भ के समय द्रौपदी रजस्वला थी, वैसे ही तेरह वर्ष के समाप्ति पर भी वह रजस्वला ही थी ! स्पष्ट है कि, उस वनवास अज्ञातवास समय में सब पांडवों ने द्रौपदी के विषय में संपूर्ण ब्रह्मचर्य पालन किया था !

इस प्रकार विराट दरबार में पांडव प्रकट होने के बाद राजकुमारी उत्तरा का अभिमन्यु से विवाह निश्चित हुआ; और पाँडव विराटनगर से उपप्लव्य स्थान पर गये। वहाँ से दूत द्वारका गये; और श्रीकृष्ण, सुभद्रा, स्वयं अभिमन्यु तथा अन्य स्वजन विपुल सामग्री एवं सेना लेकर उपप्लव्य आये। महाभारतकार ने इसका स्पष्ट वर्णन दिया है (अध्याय ७२ श्लोक १६ से २६)। फिर बड़े समारोहपूर्वक विवाह सम्पन्न हुआ (७२/२७)। इन सब बातों में कुछ दिन अवश्य ही लगे होंगे। यह देखते अभिमन्यु-उत्तरा विवाह उपरोक्त कृष्ण अष्टमी के बाद आने वाले शुक्ल पक्ष में मानना उचित होगा।

उधर, युद्ध में अभिमन्यु के मरने पर विधवा उत्तरा ने अपने करुण विलाप में कहा—

एतावानिह संवासो विहितस्ते मया सह
षण्मासान् सप्तमे मासि त्वं वीर निधनं गतः ॥ स्त्रीपर्व २०-२८.

"वीर पुरुष, इस भूलोक में मेरे साथ आपका सहवास इतना ही यानी छः मास नियुक्त था (मेरे भाग्य में था); और (विवाह से) सातवे माह में तुम्हारा निधन हो गया।" यहाँ महाकवि ने एक महत्त्वपूर्ण कालगणनात्मक संकेत रख दिया है, जो उक्त कृष्ण अष्टमी का मास निश्चित करने में सहायक होगा।

इस मास का विवेचन पूर्णिमान्त तथा अमावास्यान्त दोनों दृष्टियों से हो सकता है। भारतवर्ष में कहीं एक तो कहीं दूसरी पद्धति प्रचलित है। पूर्णिमान्त मास कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को आरम्भ होकर पूर्णिमा पर समाप्त होता है ; अमावास्यान्त मास शुक्ल प्रतिपदा से शुरू होकर अमावास्या पर समाप्त होता है। विशेष यह है कि, दोनों पद्धति शुक्ल पक्ष में एकरूप होती हैं; किन्तु कृष्ण पक्ष के समय उनमें एक माह का अन्तर दिखता है। दोनों में चैत्र शुक्ल पक्ष वही होगा; किन्तु उसके बाद अमावास्यान्त पद्धति से चैत्र कृष्ण पक्ष आयेगा तो पूर्णिमान्त पद्धति से वैशाख कृष्ण आकर, दोनों में एक माह का अन्तर दिखेगा। किन्तु उसके पश्चात् फिर दोनों का ही वैशाख शुक्ल होगा।

महाभारत के मास पूर्णिमान्त है या अमावास्यान्त ? विद्वानों ने इस पर काफी विचार किया है। मेरा निश्चित मत है कि, महाभारत के मास मूलतः अमावास्यान्त हैं;जिसके प्रमाण मैंने आगे दिये हैं। किन्तु अर्जुन प्रकटीकरण का वह माह निश्चित करने में फिलहाल हम पूर्णिमान्त तथा अमावास्यान्त दोनों प्रकार से विचार करेंगे।

उस मास के चार विकल्प

कौन सा था वह मास ? वैसे तो ग्रीष्म ऋतु का संबंध ज्येष्ठ तथा आषाढ़ से आता है। किन्तु नीलकंठ ने वैशाख का उल्लेख किया होने से हम उसका भी विचार करें। अब हमारे सामने उस मास के निम्न चार विकल्प आते हैं—

	अमावास्यान्त		पूर्णिमान्त
१.	(चैत्र कृष्ण अष्टमी)	=	वैशाख कृष्ण अष्टमी
२.	वैशाख कृष्ण अष्टमी	=	ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी
३.	ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी	=	आषाढ़ कृष्ण अष्टमी
४.	आषाढ़ कृष्ण अष्टमी	=	(=श्रावण कृष्ण अष्टमी)

इनमें से प्रथम विकल्प इसलिये निरस्त हो जाता है कि, वह ग्रीष्म ऋतु में कदापि नहीं माना जा सकता। द्वितीय विकल्प का विचार बाद में करेंगे। तृतीय विकल्प में अभिमन्यु की विवाह तिथि आषाढ़ शुक्ल पक्ष में जायगी, और वहां से छः मास पौष शुक्ल में पूर्ण होकर सातवाँ माह आयगा। किन्तु लड़ाई के तेरहवे रोज हुए अभिमन्यु वध की तिथि इतनी दूर किसी ने भी नहीं बताई है। जैसा कि मैंने 'महाभारत युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य' में बताया है युद्धारम्भ अमावास्या पर होकर लड़ाई एक रोज छोड़कर चली। इस प्रकार अभिमन्यु वध की तिथि कृष्ण दशमी (नवमी) आती है; जो अमावास्यान्त पद्धति से मार्गशीर्ष की और पूर्णिमान्त पद्धति से पौष की होगी। किन्तु दोनों पद्धतियों से पौष शुक्ल पक्ष इसके बाद आयगा। इसी पुस्तक में मैंने इस विषय में दो अन्य प्रमुख मत भी दिये हैं; उनके अनुसार तो अभिमन्यु वध की तिथि मैंने

दी हुई तिथि से भी पहिले आती है। इस प्रकार तृतीय विकल्प भी अमान्य हो जाता है।

क्या वह ज्येष्ठ था ?

फिर भी चतुर्भुज मिश्र अज्ञातवास समाप्ति ज्येष्ठ में ही मानकर लिखते हैं, "तेषां ज्येष्ठस्य षड्विंशे स्वप्रकाशः। तस्य संभावितैक दिन वृद्धिरप्यूहनीयेति। ततश्च पञ्चषदिनाभ्यन्तर एव दूतानामुपप्लव्यात् द्वारकागमनं द्वारकातश्चाभिमन्युप्रभृतीनामुपप्लव्यागमनं बोध्यम्। तत्र च विद्वद्भिरनुद्वेष्यं तेषां तत्कालीनानां पुरुषविशेषाणां भगदनुगृहीतानां लोकोत्तरचरितत्वात्। अन्यथा स्त्रीपर्वणि 'एतावानिह संवासो विहितस्ते मया सह। षण्मासान्सप्तमे मासि त्वं वीर निधनं गतः' इति अभिमन्यु प्रत्युत्तराविलापवचनं विरुद्धचत इति। मार्गशीर्ष पंचमी दिने हि अभिमन्युपतनम्। ज्येष्ठादेव हि मार्गशीर्षः सप्तमो भवतीति।"

इस स्पष्टीकरण में पांडव प्रकटीकरण ज्येष्ठ के २६ वें दिन कैसा बताया है ? अर्जुन स्वयं (कौरवों के सामने) कृष्ण अष्टमी को, तथा सब पाँडव बाद में (विराट के सम्मुख) एकादशी को प्रकट हुए ऐसा माना तो, कृष्ण पक्ष की एकादशी को(मास अमावास्यान्त मानकर) छब्बीसवां दिन कहा जा सकता है। किन्तु वास्तविक प्रकटीकरण कौरवों के सामने ही था।

इसके अलावा, यहाँ पांडवों के अलौकिक चारित्र्य का हवाला देकर विवाह के आमंत्रण, वर एवं स्वजनों का द्वारका से आगमन, सम्पूर्ण विधिवत् विवाह समारोह आदि सब कार्य ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी और अमावास्या के बीच सम्पन्न होना बताया है। वस्तुतः इसमें कुछ और दिन लगना आवश्यक था यह ऊपर कहा ही है। किन्तु इतना सब करने के बाद भी उस विवाह से अभिमन्यु के निधन तक सातवां महीना नहीं आता। चतुर्भुज मिश्र स्वयं अभिमन्युमृत्यु मार्गशीर्ष पंचमी को मानते हैं। वह शुक्ल पक्ष की हो या कृष्ण पक्ष की, उस तिथि तक ज्येष्ठ के अन्तिम चार पाँच दिन से भी छः मास पूर्ण नहीं होते। अतः ज्येष्ठ के उन अंतिम

दिनों को ही एक पूरा मास गिनकर, वे मार्गशीर्ष को सातवाँ मास मानते हैं। किन्तु यह सब स्पष्टही असंगत है।

और यदि इस प्रकार तीसरा विकल्प अस्वीकार्य है, तो चौथा और भी अस्वीकार्य होगा। क्योंकि, उससे तो विवाह तिथि और आगे बढ़ कर उधर अभिमन्यु वध तक का कालान्तर और कम हो जायगा।

अब रहा दूसरा विकल्प। यदि उसमें पांडव प्रकटीकरण मानकर उसके बाद आनेवाले ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष में अभिमन्यु विवाह मानते हैं, तो विवाह की सारी तैयारी को उचित समय मिलता है, और उधर विवाह से छः महिने मार्गशीर्ष शुक्ल में पूर्ण होकर सातवे माह में अभिमन्यु वध भी सिद्ध होता है। तो क्या इस विकल्प के अनुसार अज्ञातवास समाप्ति अमावास्यान्त वैशाख (पूर्णिमान्त ज्येष्ठ) के कृष्ण पक्ष में मानी जावे ? किन्तु इस प्रश्न का निश्चित उत्तर देने के पूर्व यहाँ उस विकल्प के सम्बन्ध में एक और स्पष्टीकरण इष्ट हैं। क्या अमावास्यान्त पद्धति से वैशाख का कृष्ण पक्ष ग्रीष्म ऋतु में गिना जा सकेगा ?

महाभारत की सूक्ष्म ऋतु गणना

भारतवर्ष में प्रारम्भ में पूर्णिमान्त मास प्रचलित थे, और उस हिसाब से चैत्र-वैशाख में वसन्त ऋतु, ज्येष्ठ-आषाढ़ में ग्रीष्म आदि छः ऋतुओं की गणना थी। कालान्तर से देश के कुछ भागों में अमावास्यान्त प्रणाली प्रचार में आई। किन्तु यद्यपि मासों के पक्षों का क्रम इस प्रकार लोक अपनी गणना में बदल सके, ऋतुओं के नैसर्गिक प्रारम्भ एवं अन्त में ऐसा कोई परिवर्तन असम्भव था। शास्त्रीय दृष्टि से वे सभी के लिये एक ही समय मानना चाहिये। मूल पूर्णिमान्त मास पद्धति में वसंत ऋतु चैत्र मास के अर्थात् उसके कृष्ण पक्ष के प्रारम्भ से शुरू होता है, जो अमावास्यान्त पद्धति से फाल्गुन का कृष्ण पक्ष होता है। अतः अमावास्यान्त मास मानने पर भी सूक्ष्म दृष्टि से वसंत ऋतु का समय फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा से वैशाख पूर्णिमा तक, ग्रीष्म का वैशाख कृष्ण प्रतिपदा से आषाढ़ की पूर्णिमा तक, और इसी प्रकार शेष ऋतुओं का मानना चाहिये।

महाभारत की सूक्ष्मता का यह परिचायक है कि, उसमें (आगे बताये अनुसार) मास अमावास्यान्त होते हुए भी ऋतुओं का समय उपरोक्त शास्त्रशुद्ध प्रकार से माना गया है। बल्कि इसीसे महाभारत के मास पूर्णिमान्त या अमावास्यान्त इस बारे में भ्रम भी निर्माण होता है। इसके कुछ उदाहरण देखिये। वनवास काल में पाण्डव द्वैतवन गये थे उस समय का वर्णन करते हुए वैशंपायन कहते हैं—

विमलाकाशनक्षत्रा शरत् तेषां शिवाभवत्
मृगद्विजसमाकीर्णा पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ वनपर्व १८२-११
तेषां पुण्यतमा रात्रिः पर्वसंधौ स्म शारदी
तत्रैव वसतामासीत् कार्तिकी जनमेजय ॥ १६

"महात्मा पाण्डवों ने (वहाँ) प्रसन्नता से शरद ऋतु बिताया; जब (मेघ रहित) स्वच्छ आकाश नक्षत्रों से भरा दिखता था, तथा वन्य पशु पक्षी सानन्द विहार करते थे—११। राजा जनमेजय, जब वे (पांडव) वहाँ इस प्रकार रहते थे, कार्तिक मास में शारदी पूर्णिमा की पुण्यप्रद रात प्राप्त हुई जो (शरद और हेमंत) ऋतुओं के संधिकाल में आती है।" यहाँ कार्तिक पूर्णिमा पर शरद ऋतु कीं समाप्ति बताने से, यह मास पूर्णिमान्त होगा ऐसा आभास होता है। किन्तु उसे अमावास्यान्त मानते हुवे भी शरद ऋतु की समाप्ति कार्तिक अमावास्या के बजाय पूर्णिमा पर मानना कैसा युक्तिसंगत है यह ऊपर कहा ही है। इसी प्रकार जब अन्तिम शांतिवार्ता हेतु श्रीकृष्ण उपप्लव्य से हस्तिनापुर जाने लगे तो प्रस्थान समय इन शब्दों में बताया है—

ततो व्यपेततमसि सूर्ये विमलवद्गते
मैत्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते मृद्वर्चिषि दिवाकरे ॥ उद्योगपर्व ८३-६
कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे ॥ ७

"तदनन्तर रात्रि का अन्धकार नष्ट हुआ, और स्वच्छ आकाश में सूर्य का उदय होकर उसकी कोमल किरणें सर्वत्र फैल गईं; तब मैत्र मुहूर्त पर (भगवान श्रीकृष्ण ने प्रवासारंभ की तैयारी की)। उस दिन कार्तिक मास होकर चन्द्र रेवती नक्षत्र में था; तथा शरद ऋतु समाप्तप्राय होकर हेमंत आ रहा था।" कार्तिक (कौमुद) मास में चन्द्र रेवती नक्षत्र में होता है वह तिथि पूर्णिमा से लगभग दो-तीन रोज पूर्व यानी शुक्ल द्वादशी या त्रयोदशी हो सकती है। इस प्रकार उस समय कार्तिक का शुक्ल पक्ष समाप्त होने में था। फिर भी तब शरद ऋतु का अन्त बताया होने से, महाभारत के कुछ अभ्यासकों को यहाँ पूर्णिमान्त मास का आभास होता है। किन्तु वह मास अमावास्यान्त होते हुए भी ऋतुओं का यह वर्णन ठीक हो सकता है यह अब दुहराने की आवश्यकता नहीं।

अतः महाभारत की सूक्ष्म विचार प्रणाली देखते यह स्पष्ट है कि, उसके ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष को लगकर पूर्व में आने वाला एक कृष्ण पक्ष (चाहे पूर्णिमान्त मास पद्धति का हो या अमावास्यान्त) ग्रीष्म ऋतु में गिना जा सकता है।

एक और विकल्प

किन्तु इसके बावजूद वर्तमान संदर्भ में उपरोक्त द्वितीय विकल्प भी आखिर अमान्य कर, उसके बजाय एक अलग पांचवाही विकल्प यहाँ स्वीकार करना उचित होगा, जो इस घटना से संबंधित सब संकेतों की संगति ठीक बैठाता है। यदि यह मास (अमावास्यान्त) वैशाख के समान कोई नियमित साधारण मास होता तो महाकवि उसका स्पष्ट संकेत अवश्य देते। माना कि, जहाँ कृष्ण पक्ष का संबंध आता है, वहाँ वे प्रायः मास का नाम टाल देते हैं; फिर भी अमुक मास की पूर्णिमा के बाद ऐसा कहते हैं। जैसे, वनपर्व में काम्यक वन से पांडव तीर्थयात्रा पर कृष्ण पक्ष में निकले थे उस संबंध में महाकवि कहते हैं—

धौम्येन सहिता वीरास्तथा तैर्वनवासिभिः
मार्गशीर्ष्यामतीतायां पुष्येण प्रययुस्ततः ॥ वनपर्व ९३-२६

"मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के बाद चन्द्र पुष्य नक्षत्र में था तब वे वीर (पांडव) कुलगुरु धौम्य एवं उन अन्य तपस्वियों के साथ (तीर्थ यात्रा पर) निकले"। इसी प्रकार द्वैतवन छोड़कर पांडव फिर काम्यक वन में गये उसका समय कार्तिक पूर्णिमा के बाद का तमिस्र पक्ष बताया

है (वनपर्व अध्याय १८२ श्लोक १६, १८)। उसी तरह यहाँ भी वैशाखी पूर्णिमा के बाद का कृष्ण पक्ष ऐसा कहा जा सकता था।

अधिक मास चालू था !

किन्तु इसके अलावा भी महत्वपूर्ण बात यह है कि, भीष्म ने अपने उत्तर में अधिकमास दिनों की गणना को प्रमुख स्थान दिया है। उस उत्तर का केन्द्रबिन्दु अधिकमासों की सूक्ष्म गणना तथा उसके संबंध में (दुर्योधन द्वारा उठाया गया) कुछ विवाद यही दिखता है। प्रतिज्ञा का तेरहवां वर्ष उस रोज पूर्ण हो रहा था या नहीं, इस सीधे प्रश्न के उत्तर में भीष्म ने किये अधिक मास के सूक्ष्म विवेचन में कोई विशेष मतलब नहीं रहता, यदि उन तेरह वर्षों में आने वाले सभी अधिक मास इसके पूर्व ही पूर्ण हो चुके होते। किन्तु उन तेरह वर्षों में आने वाला अन्तिम अधिकमास द्वय अज्ञातवास समाप्ति के दिन चल ही रहा था ! यह बात ध्यान में लाने से उस दिन के विषय में, तथा कुल तेरह वर्षों की कौरवों-पांडवों ने की भिन्न गणना के बारे में, महाभारत में दिये सारे संकेत किस प्रकार सुसंगत हो जाते हैं, एवं वनवास प्रारम्भ की गूढ़ तिथि भी प्राप्त होती है, यह शीघ्र ही स्पष्ट होगा।

किन्तु प्रति पांचवे साल में दो अधिकमास यह भीष्म ने बताया अनुपात देखते, उस तेरहवे साल के अन्त में अधिक मास किस प्रकार आ सकते थे ? इसी में महाकवि का एक महाकूट है। पांच वर्षों में एक अधिक मास द्वय इस हिसाब से तेरहवें वर्ष के अन्त में केवल दूसरा द्वय कदापि सम्भव नहीं। क्या वह तीसरा द्वय होगा ? ऊपरी दृष्टि में तीन द्वय के लिये पन्द्रह वर्ष चाहिये ऐसा भ्रम हो सकता है। किन्तु वनवास प्रारम्भ के करीब एक वर्ष पूर्व यदि अधिक मास आ गये होंगे, तो वनवास के चतुर्थ वर्ष में वनवासकालीन प्रथम द्वय आकर, वनवास के नौवें वर्ष में दूसरा द्वय आयगा; और फिर तेरहवे (अज्ञातवास वाले) वर्ष के समाप्ति काल में तीसरा द्वय आ सकता है। इसका माहवार ब्यौरा मैंने आगे दिया है। किन्तु ऐसे दो द्वयों में हमेशा मुजब अट्ठावन मास का

ही अन्तर होते हुए भी, उनके संवत् वर्षानुक्रम में कभी कभी केवल चार का ही अन्तर किस प्रकार हो सकता है इसका विवरण मैंने ऊपर किया है, उसका स्मरण यहाँ आवश्यक है। यही विशिष्ट परिस्थिति ध्यान में रखकर महाकवि ने यह रहस्यमय कालगणना की है।

वह कौनसा अधिकमास था ?

अब अर्जुन प्रकटीकरण के समय यदि (तीसरा) अधिकमास द्वय चालू था, तो उसका कौनसा मास चालू था—प्रथम या द्वितीय ? वह प्रथम अधिकमास नहीं था। यदि होता तो उसके पश्चात् एक और अधिकमास जाने के बाद नियमित ज्येष्ठ प्रारम्भ होता। किन्तु इस हालत में वह प्रथम अधिक मास ग्रीष्म ऋतु का नहीं हो सकता। ग्रीष्म का प्रारम्भ (अमावास्यान्त) ज्येष्ठ को लगकर पूर्व में आने वाले एक पक्ष तक ही माना जा सकता है। उससे भी पूर्व का कोई पक्ष, चाहे साधारण वैशाख का या अधिकमास का, ग्रीष्म में नहीं आ सकता। ऋतु समय-समय पर चान्द्र मासों में अपना स्थान छोड़ते हैं, इसको भी (ऊपर बताये अनुसार) हमने ध्यान में लिया, तो वे आगे खसकते हैं, पीछे कदापि नहीं। अतः इन दो अधिक मासों में से द्वितीय मास का ही कृष्ण पक्ष ग्रीष्म ऋतु में आ सकता है।

इसके अलावा यदि वह कृष्ण अष्टमी प्रथम अधिक मास की होती, तो तब तक तेरह वर्षों में केवल चार अधिक मास और बारह दिन होते। किन्तु भीष्म के उत्तर में पांच पूर्ण अधिक मास और बारह दिनों का उल्लेख है; जो वह अधिकमास द्वितीय लेने से ही सिद्ध हो सकता है।

अतः अर्जुन प्रकटीकरण की वह कृष्ण अष्टमी उस वर्ष ज्येष्ठपूर्व (यानी वैशाखोत्तर) द्वितीय अधिकमास की थी। यह कृष्ण पक्ष ग्रीष्म ऋतु में आता है। फिर पांडव प्रकटीकरण उक्त द्वितीय अधिकमास में मानने से अभिमन्यु विवाह की तैयारी के लिये आवश्यक समय भी उपलब्ध होकर विवाह समारंभ ज्येष्ठ मध्य में आता है, जहाँ से उसकी मृत्यु तक बराबर छः माह पूर्ण होकर सातवां चालू होता है।

ऊपर बताई तिथि अमावास्यान्त मास की है। यदि उसको पूर्णिमान्त पद्धति की मानी, तो फिर उस ज्येष्ठ पूर्व द्वितीय अधिकमास के कृष्ण पक्ष के पश्चात् उसी का शुक्ल पक्ष आकर, उसके बाद ज्येष्ठ प्रारम्भ होगा। किन्तु पूर्णिमान्त पद्धति से ठीक ज्येष्ठ से ही ग्रीष्म का आरंभ मानना चाहिये; उसके पूर्व नहीं। अतः उस द्वितीय अधिकमास का कृष्ण पक्ष (बल्कि उसके बाद आने वाला शुक्ल पक्ष भी) ग्रीष्म ऋतु में नहीं आयगा। इसके अलावा भी उस मास को पूर्णिमान्त मानने पर कुछ और आपत्ति है; जिसका उल्लेख आगे किया है।

एक पाठभेद

श्लोक ३०-२६ में 'आदातुं गा सुशर्माथ कृष्णपक्षस्य सप्तमीम्' इस पंक्ति के स्थान पर पुणें की भांडारकर अनुसंधान संस्था द्वारा प्रकाशित महाभारत में 'आदत्त गाः सुशर्माथ धर्मपक्षस्य सप्तमीम्' यह पंक्ति दी है। अतः 'कृष्णपक्षस्य' के स्थान पर 'धर्मपक्षस्य' की भी चर्चा यहाँ इष्ट होगी। 'धर्म' का मतलब है गर्मी का अर्थात् ग्रीष्म ऋतु। किन्तु 'ग्रीष्मे शत्रुवशं गताः' (४७-२३) में ग्रीष्म का स्पष्ट उल्लेख होने के बाद फिर से 'धर्मपक्षस्य' कहने में कोई स्वारस्य नहीं था। फिर उसमें एक विशिष्ट तिथि के साथ उसी पूरे ऋतु का पुनः उल्लेख होने से वह मास निश्चित करने में कुछ भी और सहायता नहीं होती।

किन्तु हम 'धर्मपक्षस्य' शब्द भी लें, तो अन्तर इतना ही पड़ेगा कि, उसमें ग्रीष्म ऋतु के कृष्ण पक्षों के साथ शुक्ल पक्ष भी आ जायेंगे। इनमेंसे कृष्ण पक्ष वे ही होंगे जिनका विचार हमने किया है। शुक्ल पक्ष होंगे—ज्येष्ठ शुक्ल ओर आषाढ़ शुक्ल। किन्तु यदि अर्जुन प्राकट्य इन शुक्ल पक्षों में माना, तो उसका मतलब होगा कि, तेरह वर्षों में आने वाले सब अधिक मास इसके पूर्व ही बीत चुके थे। दूसरी बात यह कि, शुक्ल पक्ष के साथ महाभारतकार महिने का नाम स्पष्ट कर देते हैं। किन्तु वह पक्ष शुक्ल नहीं था इसका एक स्पष्ट प्रमाण भी है। सप्तमी को सुशर्मा ने विराट पर धावा बोल दिया तब सेना लेकर विराटराज तत्काल उधर गया। सूर्य पश्चिम की ओर ढल रहा था उस समय उसकी

सेना सुशर्मा के पास पहुँची (विराट पर्व ३२।१)। फिर भयानक युद्ध शुरू हुआ। धीरे-धीरे सूर्यास्त हो गया (३२।७)। जब पूरा अन्धकार हो गया तो युद्ध स्थगित करना पड़ा।

तमसाभिप्लुते लोके रजसा चैव भारत
अतिष्ठन् वै मुहूर्तं तु व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ ३३।१

"जनमेजय, (सूर्यास्त होकर रात्र प्रारम्भ होने पर) सब ओर धूल तथा अंधकार भी छा गया; अतः व्यूहबद्ध योद्धा कुछ देर (लड़ना बन्द कर रणभूमि पर वैसे ही) खड़े रहे।"

ततोऽन्धकारं प्रणुदन्नुदतिष्ठत चन्द्रमाः
कुर्वाणो विमलां रात्रिं नन्दयन् क्षत्रियान् युधि ॥ २
ततः प्रकाशमासाद्य पुनर्युद्धमवर्तत ॥ ३

"कुछ समय बीतने के बाद अंधकार का नाश करते हुए चन्द्र का उदय हुआ; जिससे (अंधकारमय) रात्रिकाल स्वच्छ होकर उस रण क्षेत्र पर लड़ने वाले आनन्दित हो गये—२. तब उजाला होकर लड़ाई पुनः चालू हो गई"। निःसन्देह यह वर्णन कृष्ण पक्ष सिद्ध करता है। शुक्ल पक्ष में चन्द्र सूर्यास्त के साथ ही आकाश में दिखता है; और फिर उस रात्रि में उसका अस्त होता है। विशेषतः शुक्ल सप्तमी को सूर्यास्त समय चन्द्र करीब मध्य आकाश में ही होकर, उधर मध्यरात्रि के करीब उसके अस्त के साथ सर्वत्र अंधकार छा जाता है। इसके विपरीत कृष्ण पक्ष में सूर्यास्त पर अंधकार होकर बाद में चन्द्रोदय होता है। कृष्ण सप्तमी को चन्द्रोदय मध्यरात्रि के लगभग होता है। वह ग्रीष्म ऋतु होने से सूर्यास्त सायंकाल में बहुत देर से होना चाहिये। फिर जब चन्द्रोदय हुआ तब सर्वत्र प्रकाश होकर लड़ाई पुनः चालू हुई।

आषाढ़ शुक्ल में अर्जुन प्रकटीकरण माननेसे तो, अभिमन्यु के विवाह और मृत्यु के दरम्यान छः मास भी पूर्ण नहीं होंगे।

अतः 'धर्मपक्षस्य' से भी वैशाखोत्तर द्वितीय अधिकमास कृष्ण पक्ष ही सिद्ध होता है। वस्तुतः यह पाठ कमसम्भव होकर 'कृष्णपक्षस्य' ही मार्मिक एवं सुसंगत प्रतीत होता है।

प्रकरण ४

वनवास आरंभ की तिथि

भीष्म के उत्तर की एक और खूबी यह है कि, तेरह वर्षों में अधिक मास समय पांच माह बारह रात्रि बिताने के बाद, वह पाण्डवों ने पूर्ण किया था या नहीं इसका स्पष्ट निर्णय न देते भीष्म एकदम कहते हैं कि, पाण्डव धर्मनिष्ठ एवं सत्यवादी होकर उन्होंने प्रतिज्ञा का बराबर पालन किया है (अध्याय ५२ श्लोक ५ से १०)। अतः यहाँ एक कूट यह भी बन गया है कि पाण्डवों ने तेरह वर्ष अधिक मास सहित (अर्थात् सौर मान से) पूर्ण किये थे या अधिक मास छोड़कर (यानी चान्द्र मान से) ? इस पर कुछ प्रमुख मत इस प्रकार हैं ।

क्या पांडवों ने अधिक मास पूर्ण किये ?—विभिन्न मत

नीलकंठ का मत इस प्रकार हैं । द्यूत (वनवास प्रारम्भ) विजयादशमी को अर्थात् आश्विन शुक्ल दशमी को हुआ था, क्योंकि लोग प्रायः उसी समय द्यूत खेलते हैं; अतः इसी तिथि पर तेरहवे वर्ष की समाप्ति होगी ऐसी दुर्योधन की अपेक्षा थी (जिससे बीच के सारे अधिक मास मिलाकर तेरह सौर वर्ष पूर्ण हो जाते)। किन्तु पाण्डवों ने केवल तेरह चान्द्र वर्ष पूर्ण कर प्रतिज्ञा का पालन किया; अतः वे विजयादशमी से (अधिक मास के) पांच माह बारह दिन पूर्व (चैत्र कृष्ण चतुर्दशी को) प्रकट हो सकते थे; फिर भी उससे कुछ दिन अधिक बिताकर वे वैशाख कृष्ण अष्टमी को प्रकट हुए। "विजयादशम्यां द्यूते पाण्डवपराजयः। लोके तस्यैव प्रायेण द्यूतकालत्वात्। ग्रीष्मे च गोग्रहार्थं प्रवृत्ता इत्युक्ते तेन विजयादशम्यामागामिन्यां त्रयोदशाब्दपूरणं भविष्यतीति दुर्योधन-

प्रत्याशा। पाण्डवास्तु चान्द्राब्दमानेन त्रयोदशवत्सरानतिवाह्य कृतकृत्या अभूवन्। तत्र विजयादशमीतःपूर्वं पञ्चमासाः द्वादशदिनानि प्रकटीभवितव्यत् तत्र दर्शान्तमासे वैशाखकृष्णसप्तम्यामाविर्भूताः प्रतिज्ञां निस्तीर्यैव कानिचिदधिकान्यपि दिनानि अतिवाह्य आविर्भूता इत्पर्थः।"

किन्तु जब उस समय के पंचांगों में अधिक मास जोड़े जाते थे, पूरा समाज उसी अनुसार चलता था, तब पाण्डवों को क्या अधिकार था कि प्रतिज्ञा के तेरह वर्ष गिनने में वे अधिक मास छोड़कर केवल चान्द्र वर्ष-गणना करें ? और सत्यप्रतिज्ञ भीष्म उसे कैसी मान्यता देते ? न द्यूत के समय कोई करार भी इन अधिकमासों को छोड़ने का हुआ था। और यदि प्रतिज्ञा के वर्षों में से अधिक मास समय छोड़नाही था, तो उनमें से करीब चौबीस दिन क्यों उस नरक समान अज्ञातवास में व्यर्थ बिताये ? इन्हीं चौबीस दिनों में ही तो दुष्ट कीचक द्रौपदी को त्रस्त कर रहा था। बात यह है कि, मूल वनवास प्रारम्भ तिथि ही गलत लेकर चलने से नीलकंठ द्वारा पाण्डवों के अधिकमास पालन के विषय में यह विपरीत धारणा व्यक्त की गई है, जिससे दुर्भाग्यवश पाण्डवों के चरित्र पर कलंक सा लग रहा है।

अर्जुन मिश्र का भी अभिप्राय है कि, पाण्डवों ने अधिक मास छोड़ कर प्रतिज्ञा पूर्ण की थी। वे लिखते हैं कि बारह (सौर) वर्षों में छः माह अठारह दिन मिलाने से (अर्थात् तेरह सौर वर्षों में से अधिकमास समय के पांच माह बारह दिन घटाने पर) तेरह चान्द्र वर्ष पूर्ण होते हैं। "एतेनाष्टादशाहोरात्रोत्तरषण्मासाधिकद्वादशवत्सरैस्त्रयोदशवर्षाणि भवन्तीति संक्षेपः"।

चतुर्भुज मिश्र का विचार भी इसी प्रकार है। किन्तु वे 'द्वादश क्षपाः' का अर्थ केवल छः दिन करते हैं; इसलिये उनके अनुसार पाण्डवों ने तेरह सौर वर्षों में अधिकमास काल के पांच माह छः दिन घटाकर (अर्थात् बारह सौर वर्षों में छः मास चौबीस दिन जोड़कर) तेरह चान्द्र

वर्ष पूर्ण किये थे। श्लोक ५२-६ में 'जिनका राजा युधिष्ठिर है वे धर्म का उल्लंघन कैसे कर सकते हैं?' इस प्रकार भीष्म ने जो पाण्डवों की प्रशंसा की है, उसका उल्लेख कर चतुर्भुज मिश्र लिखते हैं—"भवदभिप्रेतसौरत्रयोदशवर्षाणां षड्दिनाधिकपञ्चमासन्यूनता चेति। एतेन चान्द्रादेवेति भीष्माभिप्रायः। एतदेव व्यक्तीभविष्यति 'येषां युधिष्ठिरो राजा' इत्यादौ। अयं च प्रश्नश्चतुर्विंशति दिनोत्तरषण्मासाधिक सौरद्वादशेषु वर्षेषु सत्सु चान्द्रत्रयोदशवर्षपूर्तौ।"

इस भाष्यकार के मत में दुर्योधन की अपेक्षानुसार तेरह सौर वर्ष आगामी कार्तिक संक्रान्ति पर समाप्त होने वाले थे, किन्तु पाण्डव चान्द्र वर्ष मानते थे। 'विषमपादविवरण' तथा 'लक्षाभरण' टीकाओं का अभिप्राय भी इसी प्रकार है।

किन्तु पाण्डवों ने अधिक मास पूर्ण किये थे इस आशय के भी कुछ मत हैं। 'विरोधार्थभंजिनी भाष्य' के अनुसार वनवास ज्येष्ठ कृष्ण दशमी को प्रारम्भ हुआ था; और यद्यपि अर्जुन ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को गोग्रहण युद्ध में प्रकट हुआ, फिर भी सब पाण्डवों ने मिलकर विराट के दरबार में दशमी को ही प्रकट होकर सौर मान से (अर्थात् अधिक मास समाविष्ट कर) तेरह वर्ष पूर्ण किये थे। "युधिष्ठिरस्यायं भावः........तेन सौरोऽपि वत्सरो गृहीतः। तथा च सौराषाढ़प्रथमदिने कृष्णदशम्यां वनवासारंभः। एतद्वर्षेऽपि ज्येष्ठकृष्णाष्टम्यां उत्तरगोग्रहः। नवम्यां संक्रान्तिः। दशम्यां प्रकटता"। यद्यपि इस भाष्य में पाण्डवों द्वारा अधिकमास पालन मान्य किया है, फिर भी यदि कृष्ण दशमी को प्रकट होना प्रतिज्ञानुसार उचित था, और अर्जुन उसके दो रोज पूर्व प्रकट हुआ, तो क्या दुर्योधन का आक्षेप ठीक ही नहीं था?

श्री चि. वि. वैद्य ('महाभारताचा उपसंहार') नीलकंठ का अनुसरण करते हैं। किन्तु श्री उटगीकर द्वारा सम्पादित 'विराटपर्व' में पाण्डवों

ने अधिक मास सहित तेरह वर्ष पूर्ण करने की अधिकतर सम्भावना व्यक्त की है।

गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित महाभारत के हिन्दी भाषान्तर में भीष्म के उक्त उत्तर पर टिप्पणी देते हुए कहा है, "चान्द्र वर्ष तीन सौ चौवन दिनों का होता है और सौर वर्ष तीन सौ पैंसठ दिन पन्द्रह घड़ी एवं कुछ पलों का हुआ करता है। इस हिसाब से तेरह सौर वर्षों में चान्द्र वर्ष के लगभग पांच महीने अधिक हो जाते हैं। इन वर्षों में यदि छः बार अधिक मास पड़ जायं तो जिस तिथि को पाण्डवों का वनवास हुआ था, तेरहवे वर्ष की उसी तिथि तक तेरह वर्षों से पांच महीने और बारह दिन अधिक हो सकते हैं। पाण्डवों ने सूर्य की संक्रान्ति के अनुसार वर्ष की गणना की थी, अतः उन्होंने अधिमास आदि के कारण बढ़े हुए महीनों और दिनों की संख्या को अलग नहीं माना। इसी लिए उनकी गणना में तेरह ही वर्ष हुए। भीष्मजी ने चान्द्र वर्ष की गणना का आश्रय लेकर बढ़े हुए महीनों और दिनों को भी गणना में ले लिया। अतः उनके हिसाब से उस दिन तक तेरह वर्ष पूर्ण होकर पांच मास बारह दिन अधिक हुए। यह कालभेद सौर और चान्द्र वर्ष की गणना के भेद से ही हुआ है। वास्तव में सूर्य की संक्रान्ति के हिसाब से उस समय तक पाण्डवों के तेरह वर्ष छः दिन ही चुके थे। चान्द्र वर्ष की गणना के अनुसार वही समय तेरह वर्ष पांच मास बारह दिन का हो गया।"

किन्तु पाण्डवों ने और भीष्म ने एक ही हिसाब करके कालगणना की थी—तेरह चान्द्र वर्षों में उनके अनुपात से अधिक मास समय जोड़कर। भेद था उनकी और दुर्योधन की गणना में। पाण्डव भी तिथि–से–तिथि की गणना नहीं कर रहे थे। यदि पाण्डव "जिस तिथि को पांडवों का वनवास हुआ था तेरहवें वर्ष की उसी तिथि तक" प्रतिज्ञा समय गिनते तो फिर दुर्योधन का आक्षेप ही क्या रहा? इसके अलावा अर्जुन प्रकटीकरण तक यदि तेरह सौर वर्षों से छः दिन ऊपर हो गये थे, तो

सवाल उठेगा कि उस हीनतम अवस्था में वे छः दिन भी अधिक क्यों बिताते ? किन्तु छः दिन ज्यादा हो गये थे यह महाकवि की कूट रचना से निर्मित एक भ्रम मात्र है, यह हमने ऊपर देखा ही है ।

पांडवों ने अधिक मास बराबर पूर्ण किये

वस्तुतः पाण्डवों ने तेरह साल में अधिक मास समय बराबर गिना था, और इसी लिए भीष्म द्वारा उनकी सत्यवादिता तथा धर्मनिष्ठता की प्रशंसा की गई थी । बात यही थी कि ऊपर कहे अनुसार उन तेरह वर्षों में तीन बार अधिक मास द्वय आये थे । अब एक द्वय का सम्बन्ध ५८ चान्द्र मासों से होने से तीन मास द्वय पूरे बिताने की वास्तविक जिम्मेवारी उसी पर आयगी, जिसको १७४ चान्द्र मास याने साढ़े चौदह साल का समय पूरा करना हो । अतः पाण्डवों का कहना था कि, यद्यपि इन तेरह वर्षों में संयोगवश तीन अधिक द्वय आये हैं, फिर भी चूँकि प्रतिज्ञा तेरह वर्षों की ही थी, वे अन्तिम द्वय के पूरे दो माह अज्ञातवास में व्यतीत करने बाध्य नहीं थे । और इस विचार से भीष्म भी सहमत थे । ५८ चान्द्र मासों पर दो अधिक मास इस अनुपात से १५६ चान्द्र मासों पर ५ माह १२ दिन बढ़ते हैं । अतः वनवास प्रारम्भ से कुल १६१ मास १२ दिन का समय उन्होंने पूर्ण किया । इसमें बराबर तेरह सौर वर्ष हो जाते हैं; एक दिन भी कम या अधिक नहीं ।

इसके विपरीत दुर्योधन का आग्रह था कि, जो छः अधिक मास इन तेरह वर्षों में आ पड़े हैं उन्हें भी पूरा कर, पांडवों ने जिस तिथि से वनवास प्रारम्भ किया था ठीक उसी तिथि पर अज्ञातवास समाप्त करना चाहिये था । किन्तु प्रतिज्ञा वर्षों से संबद्ध अधिकमास समय से ज्यादा दिनों का आग्रह संयोगवश उस समय आये तीसरे अधिक मास द्वय का अनुचित लाभ उठाने का दुर्योधन का प्रयास मात्र था । अब यह भी स्पष्ट होगा कि, "जिस तिथि को पाण्डवों का वनवास हुआ था, तेरहवें वर्ष की उसी तिथि तक" यदि काल गणना की जावे, तो तेरह चान्द्र वर्षों में पूरे छः अधिक मास

जुड़ जावेंगे; न कि पांच मास बारह दिन जैसा कि गीता प्रेस की उक्त टिप्पणी में बताया है ।

वनवास प्रारम्भ ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को

इस प्रकार जहाँ पाण्डव (तथा भीष्म) १५६ मास + ५ माह १२ दिन गिन रहे थे, वहाँ दुर्योधन १५६ + ६ माह गिन रहा था । अर्थात् वह और अठारह दिन का आग्रह कर रहा था । इन अठारह दिनों से तीसरा अधिक मास द्वय पूर्ण होकर वनवास प्रारम्भ तिथि आ जाती । जैसा कि ऊपर बताया है, पाण्डवों ने वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास कृष्ण अष्टमी को मुक्ति दिवस माना था । इसमें यदि अठारह दिन मिलाते हैं तो ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी आती है, जिस दिन दुर्योधन के अनुसार पाण्डवों ने अज्ञातवास समाप्त कर प्रकट होना था ।

अतः महाभारत की मूलभूत वनवास प्रारम्भ तिथि ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी है । इसी रोज द्यूत होकर पांडव हस्तिनापुर से वनवास पर निकले । इसी तिथि से प्रारम्भ कर पांडवों ने सूक्ष्म गणनानुसार तेरह सौर वर्ष बराबर पूर्ण किये । किन्तु दुर्योधन के हिसाब से उन्होंने अठारह दिन कम बिताये थे; और उसी बात पर से युद्ध लड़ा गया । इसलिये महाकवि ने खूबी से प्रत्यक्ष लड़ाई के कुल दिन भी अठारह बताये हैं ! यही उस दिनसंख्या का रहस्य है । महाभारत में वर्णित कौरव पाण्डव युद्ध अठारह दिनों के लिए हुआ था ।

फिर भी एक लेखक कहते हैं कि, वनवास प्रारम्भ मार्गशीर्ष में होकर अर्जुन का प्रकटीकरण भी मार्गशीर्ष में हुआ था; और पाण्डवों ने प्रतिज्ञा के नियत समय से (तेरह सौर वर्षों से) अठारह दिन अधिक व्यतीत किये थे (The Date of the Maha Bharata War and the Kali Yugadhi, by K. Sriniwas Raghavan, 1969, Pages 25-26) । वनवास प्रारम्भ तथा अज्ञातवास समाप्ति के ये मास तो गलत हैं ही; किन्तु उसके अलावा पाण्डव वनवास-अज्ञातवास में अधिक दिन क्यों

बिताते ? और वे बिताते तो फिर उनका राज्य न लौटाने हेतु दुर्योधन के पास कौनसा बहाना रह जाता ?

इस प्रकार पाण्डवों ने अधिक मास सहित प्रातेज्ञा का बराबर पालन किया था। फिर नीलकंठ आदि के मन में इसके विपरीत धारणा कैसी हुई ? महाभारत में पांडव प्रकटीकरण का ऋतु ग्रीष्म बताया है। अब यदि वनवास प्रारंभ आश्विन में माना जाता है, तो स्वाभाविक ही कल्पना होती है कि, पांडवों ने तेरह सौर वर्षों में पांच-छः माह कम बिताये, जिनके विषय में दुर्योधन का आक्षेप होना चाहिये; और ये पांच-छः माह अधिकमास के ही होंगे जिनको चान्द्र वर्षों में जोड़ने से सौर वर्ष होते हैं। क्योंकि उनके अलावा मूल तेरह चान्द्रवर्षों में ही पांडव कुछ कम कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण होने का दावा करते ऐसी कल्पना तो ये अभ्यासक भी नहीं करेंगे।

ग्रीष्म ऋतु के प्रमाण

किन्तु वनवास प्रारम्भ आश्विन में नहीं हुआ था। वह हुआ था ग्रीष्म ऋतु में (ज्येष्ठ शु. ११ को); जिसके कुछ और प्रमाण यहाँ देता हूं।

द्यूत के तुरन्त पूर्व द्यूतसभा का निर्माण हुआ था; वह आश्विन के पूर्व वर्षा ऋतु में शायद ही सम्भव था।

द्यूत आश्विन में मानने से राजसूय यज्ञ की सारी समय-सारणी अस्त-व्यस्त हो जाती है। उसके अभिषेचनीय विधि की तिथि धर्मशास्त्रा-नुसार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा निश्चित है।* शिशुपाल वध उसी रोज या उसके लगभग होना चाहिये। उसका समाचार पाते ही शाल्व ने बदला लेने हेतु तुरन्त द्वारका पर हमला किया। उस समय राजसूय यज्ञ के

* देखिये History of Dharmashastra, by Dr. P. V. Kane, Vol. II. ii, P. 1216 (इसकी हिन्दी आवृत्ति भी प्रकाशित है); तथा शतपथ ब्राह्मण, Eng, Tran. in S. B. E. Series, Vol. XLI. P. 68 and Vol XVI, P. 68 footnote 2.

अतिथि इन्द्रप्रस्थ से वापिस लौट रहे थे, तथा स्वयं श्रीकृष्ण भी वहीं पांडवों के पास थे (वनपर्व १४-५)। अब द्यूत आश्विन में माना तो शाल्व का यह द्वारका पर आक्रमण आश्विन पूर्व वर्षा ऋतु में मानना पड़ेगा। क्योंकि उस आक्रमण के तुरन्त बाद ही श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ से द्वारका पहुँचे और अविलम्ब शाल्व का पीछा कर प्रत्याक्रमण करने निकले; और उसी समय इधर हस्तिनापुर में द्यूत हो रहा था (देखिये वनपर्व अध्याय १३; अध्याय १४ श्लोक २२; अध्याय २२ श्लोक ४२, ४३)। किन्तु चैत्र शुक्ल के प्रारम्भ में शिशुपाल वध होने के बाद क्रुद्ध शाल्व द्वारका पर तत्काल धावा करने हेतु बीच में वसंत और ग्रीष्म ऋतु छोड़कर वर्षा ऋतु में गया होगा ऐसा मानना सयुक्तिक नहीं।

फिर शाल्व के हमले के प्रतिकार में द्वारका के आसपास के कुएँ एवं बावड़ियाँ निर्जल कर दी गई थी (वनपर्व १५-१६); जो वर्षा में सम्भव नहीं था। श्रीकृष्ण ने भी शाल्व का पीछा करने में बड़ी सेना के साथ कई नदियाँ एवं जंगल पार किये (वनपर्व २०-१५)। यह भी वर्षा ऋतु में सम्भव न होकर, उसके पूर्व वसंत का उत्तरार्द्ध तथा ग्रीष्म का पूर्वार्द्ध सूचित करता है। इसा समय उधर हस्तिनापुर में द्यूत हुआ और इधर श्रीकृष्ण शाल्व के साथ युद्ध में लगे रहे।

एक मार्मिक उल्लेख

किन्तु इसके अलावा भी महाकवि ने वनवास प्रारम्भ काल का एक स्पष्ट संकेत दिया है। वनवास के प्रारम्भ में पांडव प्रथम काम्यक बन गये; जहाँ श्रीकृष्ण आकर उन्हें मिले। उन्होंने शाल्व के साथ हुए अपने युद्ध की जानकारी पांडवों को देते हुए, उस कारण द्यूत के समय अपनी प्रत्यक्ष अनुपस्थिति स्पष्ट की। श्रीकृष्ण वहाँ से सुभद्रा तथा अभिमन्यु को साथ लेकर द्वारका लौटने के बाद, पांडव शीघ्र ही काम्यक से द्वैतवन में चले गये (वनपर्व २३-१, २, तथा देखिये आगे पृ. ६१)। उस समय वहाँ का दृश्य वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं—

ते यात्वा पाण्डवास्तत्र ब्राह्मणैर्बहुभिः सह
पुण्यं द्वैतवनं रम्यं विविशुर्भरतर्षभाः ॥२४-१६
तमालतालाम्रमधूकनीपकदम्बसर्जार्जुनकर्णिकारैः
तपात्यये पुष्पधरैरुपेतं महावनं राष्ट्रपतिर्ददर्श ॥१७
महाद्रुमाणां शिखरेषु तस्थुर्मनोरमां वाचमुदीरयन्तः
मयूरदात्यूह चकोरसङ्घास्तस्मिन् वने बर्हिणकोकिलाश्च ॥१८
करेणुयूथैःसह यूथपानां मदोत्कटानामचलप्रभाणाम्
महान्ति यूथानि महाद्विपानां तस्मिन् वने राष्ट्रपतिर्ददर्श ॥१९

"वहाँ पहुँचकर महात्मा पांडवों ने अनेक ब्राह्मणों के साथ पवित्र रमणीय द्वैतवन में प्रवेश किया—१६ । राष्ट्रपति युधिष्ठिर ने तमाल, ताल, आम्र, मधूक, नीप, कदम्ब, सर्ज, अर्जुन, कर्णिकार आदि वृक्षों से, जो (उस) 'तपात्यय' (ग्रीष्म समाप्ति) समय पुष्प धारण कर रहे थे, भरा हुआ वह महावन देखा—१७ । उस वन में विशाल वृक्षों के शिखरों पर मनोहर आवाज करते हुए मयूर, चातक, चकोर, बर्हिण तथा कोकिल पक्षियों के झुंड बैठे थे—१८ । राष्ट्रपति (युधिष्ठिर) ने उस वन में बड़े-बड़े पर्वतप्राय मदोन्मत्त हाथियों के विशाल झुंड हाथिनियों की टोलियों के साथ (उन्मुक्त विचरते हुए) देखे ।"

यहाँ (श्लोक १७) 'तपात्यय' (ग्रीष्म ऋतु का अन्त) शब्द स्पष्ट है । 'तप' का ग्रीष्म ऋतु के अर्थ में उपयोग द्रोणपर्व १६३-२४ तथा कर्णपर्व ७५-२ में भी आया है । किन्तु उसके अलावा, वनपर्व के ही अध्याय १८२ में 'तपात्यय' शब्द ग्रीष्मान्त तथा वर्षा ऋतु के आगमन के लिये निःसंदिग्ध रूप से प्रयुक्त किया गया है । वनवास के बारहवें वर्ष में (प्रकरण ६ देखिये) पांडव फिर इसी द्वैतवन में आये थे उस संबंध में महाकवि कहते हैं—

निदाघान्तकरः कालः सर्वभूतसुखावहः
तत्रैव वसतां तेषां प्रावृट् समभिपद्यत ॥१८२-१

छादयन्तो महाघोषाः खं दिशश्च बलाहकाः
प्रववर्षुर्दिवारात्रमसिताः सततं तदा ॥२
तपात्ययनिकेताश्च शतशोऽथ सहस्रशः
अपेतार्कप्रभाजालाः सविद्युद्विमलप्रभाः ॥३
क्षुब्धतोया महावेगाः श्वसमाना इवाशुगाः
सिन्धवः शोभयांचक्रुः काननानि तपात्यये ॥६

"पांडव द्वैतवन में ही थे तब ग्रीष्मकाल समाप्त होकर सब प्राणियों को आनन्दित करने वाला वर्षाकाल प्राप्त हुआ—१. तब महागर्जनाकारी काले मेघ आकाश एवं दिशाएँ व्याप्त कर रात-दिन लगातार वृष्टि करने लगे—२. ग्रीष्मान्त (वृष्टि प्रारम्भ) के समय खड़े किये तंबुओं के समान दिखने वाले उन सैकड़ों हजारों मेघों ने सूर्य का प्रकाश आवृत्त कर बिजली की विमल प्रभा प्रसृत कर दी—३. उस 'तपात्यय' काल में नदियों का जल बड़ी लाटों से व्याप्त होकर, उनका प्रवाह हवा में सूँ सूँ आवाज करते जाने वाले शीघ्रगामी बाणों के समान नाद करता बह रहा था, जिससे वनों की शोभा बढ़ रही थी—६"।

'तपात्यय' के (और वह भी द्वैतवन से ही संबंधित) इन दोनों वर्णनों में साम्य भी देखिये । प्रथम वर्णन में (२४-१८) मनोहर आवाज करने वाले मयूर, चातक (दात्यूह), कोकिल आदि के झुण्डों का उल्लेख है; तो द्वितीय वर्णन में 'स्तोककाः शिखिनश्चैव पुंस्कोकिल गणैःसह । मत्ताः परिपतन्ति स्म' (१८२-८) में भी उन्मुक्त उड़ने वाले मयूर (शिखिनः), चातक (स्तोककाः) तथा कोकिल पक्षियों का उल्लेख है । स्पष्टतः प्रथम वर्णन का 'तपात्यय' भी वर्षा ऋतु के आगमन समय का था ।

इसी की पुष्टि कालिदास के 'ऋतुसंहार' काव्य से भी होती है । उसके द्वितीय सर्ग में दिये वर्षा ऋतु के वर्णन में कहा है—

कदम्बसर्जार्जुनकेतकीवनं
विकम्पयंस्तत्कुसुमाधिवासितः
ससीकराम्भोधरसङ्गशीतलः
समीरणः कं न करोति सोत्सुकम् ॥२-१७

"कदम्ब, सर्ज, अर्जुन एवं केतकी से भरे हुए वन को कंपित करने वाला, उनके पुष्पों से सुगंधित, तथा चन्द्रकिरण व मेघों के संसर्ग से शीतल हुवा वायु किसका चित्त (प्रियमीलनार्थ) उत्सुक (उन्मत्त) नहीं करता है ?" वर्षा ऋतु के कदम्ब, सर्ज, अर्जुन आदि के पुष्पों का उल्लेख महाभारत (ऊपर उद्धृत श्लोक २४–१७) में भी बिलकुल उन्हीं शब्दों में आया है। फिर कदम्ब पुष्पों का और उल्लेख ऋतुसंहार के उस वर्षा वर्णन में श्लोक २१, २४, २५ में भी प्राप्त है। इसी प्रकार महाभारत (२४–१८) में आया चातक पक्षियों का उल्लेख ऋतुसंहार के श्लोक २–३ में एवं मयूरों का २–६, १४, १६ में आता है। तथा महाभारत (२४–१९) में आया मदोन्मत्त हाथियों का उल्लेख ऋतुसंहार में २–१५, १९ में देखा जा सकता है।

निःसंदेह वनपर्व के उपरोक्त (२४–१६ से १९) श्लोकों में निर्दिष्ट 'तपात्यय' यानी ग्रीष्मान्त तथा वर्षा ऋतु का प्रारम्भ था। उसके कुछ ही रोज पूर्व श्रीकृष्ण पांडवों को द्यूत में हुई दुर्दशा पर सान्त्वना देकर सुभद्रा अभिमन्यु को अपने साथ द्वारका ले गये थे; तथा उसके कुछ ही रोज पूर्व द्यूत होकर वनवास प्रारम्भ हुआ था। यह सब वनवास प्रारम्भ ज्येष्ठ शुक्ल में होने की पूर्ण पुष्टि कर आश्विन को निरस्त करता है। यदि वनवासारंभ आश्विन में होता, तो पांडवों के इस (प्रथम) द्वैतवन प्रवेश के समय ग्रीष्मान्त के बजाय शरद ऋतु का अंत तथा वर्षा ऋतु के आगमन के स्थान पर (मार्गशीर्ष पौष वाला) हेमंत ऋतु आता।

अंत में एक और प्रमाण। दुर्योधन ने विराट पर हमला किया तब ग्रीष्म ऋतु था यह तो महाभारत में स्पष्ट ही लिखा है (देखिये प्रकरण ३)। इसके कुछ ही रोज पूर्व उसने कहा था—

अल्पावशिष्टं कालस्य गतभूयिष्ठमन्ततः
तेषामज्ञातचर्यायामस्मिन् वर्षे त्रयोदशे ॥ विराटपर्व २६–३

"इस तेरहवे वर्ष में पांडव अज्ञात वास का अधिकतर समय बिता चुके हैं और अब कुछ थोड़ा-सा ही बाकी है"। यदि वनवास प्रारम्भ

आश्विन में होता तो अज्ञातवास समाप्ति भी दुर्योधन के अनुसार आश्विन में ही होती। उस हालत में ग्रीष्म ऋतु से आश्विन को अभी चार-पाच माह शेष होने से वह उक्त श्लोक में अज्ञातवास वर्ष अब 'अल्पावशिष्ट' है ऐसा नहीं कहता। किन्तु वनवास प्रारम्भ ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी पर होने से दुर्योधन के मन में अज्ञातवास तिथि भी वही थी, इसलिये कीचक वध का समाचार प्राप्त होने बाद, ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में उसने कहा कि पांडवों के अज्ञातवास का अधिकतर समय बीत चुका होकर कुछ थोड़ा-सा ही अब शेष है।

प्रकरण ५

तेरह वर्षों की गणना

अधिकमासों सहित तेरह वर्षों की गणना, पांडव एवं दुर्योधन के अनुसार, अब स्पष्ट हो जाती है, जो आगे दी है। अज्ञातवास काल का ब्यौरा भी अलग से बताया है। दुर्योधन की गणना स्थूल थी; पांडवों की सूक्ष्म। पांडव अधिक मास समय ठीक तेरह वर्षों के अनुपात में गिन रहे थे; किन्तु उसमें भी उनकी धर्मनिष्ठता यह थी कि वस्तुतः गणित से 'अधिक समय' का अंतिम दिन आंशिक होते हुए भी युधिष्ठिर ने उसे पूरा दिन मान लिया जैसा ऊपर कहाही है। इसीलिये अज्ञातवास की अवस्था, जो उस सप्तमी के सूर्योदय पर थी, पांडवों ने रात्रि समाप्ति तक अर्थात् अष्टमी के सूर्योदय तक बराबर चलाई। यदि वे वैसा न करते, तो सप्तमी के रात में ही सुशर्मा के साथ प्रकट होकर लड़ते। किन्तु उस समय भीम शत्रु पर फेंकने के लिये एक वृक्ष उखाड़ने लगा, तो युधिष्ठिर ने उसे तत्काल रोककर कहा—

मा भीम साहसं कार्षीस्तिष्ठत्वेष वनस्पतिः
मा त्वां वृक्षेण कर्माणि कुर्वाणमतिमानुषम् ॥ विराटपर्व ३३-१८

जनाः समवबुध्येरन् भीमोऽयमिति भारत
अन्यदेवायुधं किंचित् प्रतिपद्यस्व मानुषम् ॥ १९

"भीम ऐसा दुःसाहस मत करो; उस झाड़ को वहीं रहने दो। यदि तुम वृक्ष उठाकर कोई अतिमानुष कर्म करोगे तो लोक पहिचान लेंगे कि यह भीम है। अतः मनुष्यों द्वारा साधारणतया प्रयुक्त कोई आयुध ही ग्रहण करो।" उस रात्रि की समाप्ति को अभी कुछ घड़ियाँ बाकी थीं, जिसके पूर्व किसी भी पांडव को प्रकट नहीं होना था। अतः युधिष्ठिर ने तुरन्त यह चेतावनी दी।

पांडवों द्वारा गणना

पांडवों ने इस प्रकार सूक्ष्म गणना की थी।

			माह दि.	
ज्येष्ठ शु. ११ (प्रथम वर्ष की)	से ज्येष्ठ अमावस्या	(प्रथम वर्ष की)	= ०-२०	(३१—१०: + वनवास पूर्व १८-१०: =५८ मास)
आषाढ़ शु. १ (,,)	से ,,	(द्वितीय ,,)	= १२-००	
,, (द्वितीय ,,)	से ,,	(तृतीय ,,)	= १२-००	
,, (तृतीय ,,)	से ,,	(चतुर्थ ,,)	= १२-००	
,, (चतुर्थ ,,)	से भाद्रपद अमावास्या	(चतुर्थ ,,)	= ३-००	
भाद्रपद के बाद दो अधिक मास (चतुर्थ वर्ष में)			=	+ २-०
आश्विन शु. १ (चतुर्थ वर्ष की)	से भाद्रपद अमावास्या	(पंचम वर्ष की)	= १२-००	(५८ मास)
,, (पंचम ,,)	से ,,	(षष्ठ ,,)	= १२-००	
,, (षष्ठ ,,)	से ,,	(सप्तम ,,)	= १२-००	
,, (सप्तम ,,)	से ,,	(अष्टम ,,)	= १२-००	
,, (अष्टम ,,)	से आषाढ़ अमावस्या	(नवम ,,)	= १०-००	
आषाढ़ के बाद दो अधिक मास (नवम वर्ष में)			=	+ २-०

श्रावण शु. १ (नवम वर्ष की) से आषाढ़ अमावास्या (दशम वर्ष की)	= १२-००	(५८ मास)
" " (दशम ") से " " (एकादश ")	= १२-००	
" " (एकादश ") से " " (द्वादश ")	= १२-००	
" " (द्वादश ") से " " (त्रयोदश ")	= १२-००	
" " (त्रयोदश ") से वैशाख अमावास्या (त्रयोदश ")	= १०-००	
वैशाख के बाद प्रथम अधिक मास तथा द्वितीय " शु. १ से कृष्ण ७ (त्रयोदश वर्ष में)	=	+ १-२२

कुल = १५५-२० + ५-२२
= १६१-१२
= १३ वर्ष -५-१२
(चान्द्रमान से)
= १३ वर्ष (सौर)

प्रकट होने की तिथि:—वैशाखोत्तर (ज्येष्ठ पूर्व) द्वितीय अधिक मास कृष्ण अष्टमी।

इसमें अधिक मास का प्रथम द्वय वनवास के चतुर्थ वर्ष में, दूसरा नवम वर्ष में, किन्तु तीसरा तेरहवें वर्ष में आया है; फिर भी हर समय बीच का अन्तर ठीक अट्ठावन मास का है।

एक ओर स्पष्टीकरण यहाँ आवश्यक है। कई पाठकों के मन में यहाँ एक शंका उठेगी। भीष्म ने अधिक मास समय ५ माह १२ दिन गिना है, फिर इस तालिका में वह पांच माह बावीस दिन कैसा दिखता है? किन्तु प्रथम बात यह कि कुल समय बराबर १६१ मास १२ दिन (अर्थात् वर्ष १३-५-१२) आता है; जिसमें १५६ मूल चान्द्रमास होकर शेष पांच माह बारह दिन अधिकसमय के हैं जो ठीक भीष्म की गणनानुसार हैं। फिरभी अधिकसमय की अलग जोड़ पांच माह बावीस दिन क्यों दिखती है? इसका सूक्ष्म कारण यह है कि, वनवास प्रारंभ ठीक ज्येष्ठ मास के प्रारंभ समय शुक्ल प्रतिपदा पर न होते दस दिन बाद शुक्ल एकादशी को हुआ था। यह देखते वनवास के प्रत्येक मास की तथा अन्तिम १५६ वें मास की भी समाप्ति वस्तुतः अमावास्या पर न होते शुक्ल दशमी पर होगी। किन्तु पंचांग में अधिक मास जुड़ते हैं वे तो ठीक अमावास्या के बाद शुक्ल प्रतिपदा पर ही शुरू होते हैं, कहीं बीच में नहीं। अतः अन्त में तीसरी बार जो एक माह बावीस दिन का समय जुड़ा है, उसके दस दिन वस्तुतः वह १५६ वाँ चान्द्रमास पूर्ण करने लगे, और शेष एक माह बारह दिन विशुद्ध अधिक समय में गिने गये। यदि किसी प्रकार अधिक समय की कुल जोड़ पांच माह बारह दिन ही होती है, तो उसका आशय यह होगा कि पांडवों ने अधिक मास समय तो पूरा किया, किन्तु मूल १५६ चान्द्रमासों में दस दिन कम बिताये! इस प्रकार अधिक समय की जोड़ पांच माह बावीस दिन दिखते हुए भी १५६ चान्द्रमासों सहित कुल समय ठीक १६१ मास बारह दिन होता है।

अज्ञातवास वर्ष का समय

इसी के साथ पांडवों के न्यायोचित अज्ञातवास समय का भी ब्यौरा प्रस्तुत है। उसे भी सौर गिनने हेतु युधिष्ठिर ने कुल अधिक मास समय

से बारह दिन इस एक चान्द्र वर्ष में जोड़े, और इस प्रकार अज्ञातवास समय बारह मास बारह दिन का हुआ, जो नीचे बताया है–

प्रथम मास प्रारंभ		आषाढ़ शु. ११
द्वितीय	,,	श्रावण ,,
तृतीय	,,	भाद्रपद ,,
चतुर्थ	,,	आश्विन ,,
पंचम	,,	कार्तिक ,,
षष्ठ	,,	मार्गशीर्ष ,,
सप्तम	,,	पौष ,,
अष्टम	,,	माघ ,,
नवम	,,	फाल्गुन ,,
दशम	,,	चैत्र ,,
एकादश	,,	वैशाख ,,
द्वादश मास प्रारंभ		प्रथम अधिक मास शु. ११
द्वादश मास पूर्ण		द्वितीय अधिक मास शु. १०
बारह 'अधिक' दिवस पूर्ण		,, कृ. ७

प्रकट होने की तिथिः—वैशाखोत्तर (ज्येष्ठपूर्व) द्वितीय अधिक मास कृष्ण अष्टमी।

अज्ञातवास के इस कालगणना की एक पुष्टि प्रस्तुत है। अज्ञातवास के चतुर्थ मास में ब्रह्मोत्सव आया था; तथा उसमें भीम का जीमूत से मल्ल-युद्ध हुआ था।

अथ मासे चतुर्थे तु ब्रह्मणः सुमहोत्सवः
आसीत् समृद्धो मत्स्येषु पुरुषाणां सुसम्मतः ॥ १३–१४
तत्र मल्लाः समापेतुर्दिग्भ्यो राजन् सहस्त्रशः । १५

"(अज्ञातवास के) चतुर्थ वर्ष में ब्रह्मा का बड़ा महोत्सव आया, जो मत्स्य देश की जनता में विशेष लोकप्रिय था–१४. राजा जनमेजय, उस समय

वहाँ सभी दिशाओं से हजारों मल्ल आये–१५"। परंपरानुसार यह ब्रह्मोत्सव शरद ऋतु में होता था। सर्वज्ञनारायणभाष्य में कहा है, "ब्रह्मणः उत्सवः शरदि कर्तव्यो देशविशेषे प्रसिद्धः।" तथा आचार्य नीलकंठ उस उत्सव का कारण भी बताते हुए लिखते हैं, "ब्रह्मणः उत्सवः शरदि नवधान्योत्पत्तौ सर्वैः क्रियते स च देशविशेषे प्रसिद्धः।" नवधान्योत्पत्ति होने पर यह मनाया जाता है, अर्थात् उसका समय शरद ऋतु के प्रथम मास आश्विन में होना चाहिये, जो वर्षा के बाद आता है। मोरोपंत कृत मराठी विराट पर्व का संपादन करते हुए प्रो. म. ना. अदवंत एक टिप्पणी में लिखते भी हैं कि, नवधान्योत्पत्ति पर मनाया जाने वाला यह ब्रह्मोत्सव आश्विन माह में होता था। अज्ञातवास वर्ष की ऊपर दी हुई तालिका में यह आश्विन का ब्रह्मोत्सव अज्ञातवास के ठीक चतुर्थ मास में आया दिखेगा।

इस सम्बन्ध में एक और बात। जहाँ वनवास प्रारम्भ ज्येष्ठ शुक्ल ११ को हुआ था वहाँ तेरहवें अज्ञातवास वर्ष का प्रारम्भ आषाढ़ शुक्ल ११ को बताया है। किन्तु तिथियों के इस भेद का कारण, जैसा कि अभी तक के विवेचन से स्पष्ट होगा, पांडवों द्वारा अधिक मास समय की सूक्ष्म गणना यह था। फिर भी मैं यहाँ बता दूँ कि, आचार्य नीलकंठ के मतानुसार भी वनवास प्रारम्भ तिथि और अज्ञातवास आरम्भ तिथि इनमें यह अन्तर आवश्यक होता है—और वह बहुत अधिक। वे वनवास प्रारम्भ आश्विन में तथा अज्ञातवास समाप्ति वैशाख में मानते हैं। इसका मतलब होगा कि यदि अज्ञानवास का आरम्भ भी आश्विन में माना तो पांडवों ने मात्र सात आठ मास ही अज्ञातवास किया। किन्तु तेरह वर्षों में पांडवों ने अधिक मास नहीं गिने ऐसा कहने वाले नीलकंठ आदि भी पांडवों ने अज्ञातवास में बारह मास भी पूरे नहीं किये ऐसा नहीं कहेंगे। इसके अलावा स्वयं महाभारतकार ने अज्ञातवास के दस मास पूर्ण होने का स्पष्ट उल्लेख किया होकर (विराट पर्व १४–१, आगे उद्धृत), उसके बाद कीचक ने द्रौपदी को सताना प्रारम्भ किया ऐसा

कहा है। अतः नीलकंठजी को वनवास आरम्भ आश्विन में मानते हुए भी अज्ञातवास वर्ष का आरम्भ वैशाख में मानना पड़ेगा; तभी अज्ञातवास के बारह मास पूर्ण हो सकेंगे। फिर अज्ञातवास का आरम्भ आश्विन में मानने पर उसके चतुर्थ मास में ब्रह्मोत्सव असम्भव है; यद्यपि वैशाख में आरम्भ मानने पर भी वह सम्भव नहीं।

दुर्योधन की गणना

इधर दुर्योधन तेरह वर्षों की गणना इस प्रकार चाहता था—

ज्येष्ठ शु. ११	से	ज्येष्ठ शु. १०	=१ वर्ष	(प्रथम)
,,	से	,,	=१	(द्वितीय)
,,	से	,,	=१	(तृतीय)
,,	से	,,	=१	(चतुर्थ)
(इसमें भाद्रपद के बाद दो अधिक मास)				
ज्येष्ठ शु. ११	से	ज्येष्ठ शु. १०	=१	(पंचम)
,,	से	,,	=१	(षष्ठ)
,,	से	,,	=१	(सप्तम)
,,	से	,,	=१	(अष्टम)
,,	से	,,	=१	(नवम)
(इसमें आषाढ़ के बाद दो अधिक मास)				
ज्येष्ठ शु. ११	से	ज्येष्ठ शु. १०	=१	(दशम)
,,	से	,,	=१	(एकादश)
,,	से	,,	=१	(द्वादश)
,,	से	,,	=१	(त्रयोदश)
(इसमें वैशाख के बाद दो अधिक मास)				
			कुल=१३	

प्रकट होने के लिए तिथिः—ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी।

दुर्योधन के अनुसार अज्ञातवास समय कौनसा होगा? अन्तिम वर्ष के दो अधिक मास प्रतिज्ञा के तेरह वर्षों में गिनने का यद्यपि उसका आग्रह था, वे दोनों माह अज्ञातवास वर्ष में ही गिनकर उसको कुल चौदह मास मानने की बात तो उसने भी नहीं की होगी। अज्ञातवास का प्रत्येक दिन दारुण अपमान तथा (पहिचाने जाने पर फिर पूरे वनवास की शर्त के कारण) भयानक जोखिम से भरा था। ऐसी अवस्था में केवल अधिक मासों के कारण उसमें इतनी वृद्धि का आग्रह कोई नहीं मानता।

दुर्योधन का अज्ञातवास के लिये चौदह माह का आग्रह नहीं था यह एक और बात से भी सिद्ध है। ब्रह्मोत्सव अज्ञातवास के चतुर्थ माह में आया था यह महाकवि ने स्पष्ट कहा है। ब्रह्मोत्सव आश्विन में होता है। अतः पांडवों का अज्ञातवास प्रारंभ आषाढ़ में ही हुआ था यह सिद्ध है। अब यदि आगामी वर्ष की ज्येष्ठ शुक्ल दशमी तक दो अधिक मास गिनकर चौदह मास पूरे करना होते, तो अज्ञातवास प्रारंभ ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को होना चाहिये था। उस समय पांडव प्रकट रूप से द्वैतवन में थे। अतः यदि चौदह मास के अज्ञातवास का दुर्योधन का आग्रह होता, तो वह उस ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को या उसके लगभग पांडवों के पास जाकर कहता कि, इस समय आपका अज्ञात होना आवश्यक होते हुए भी आप प्रकट घूम रहे हो अतः फिर वनवास पर जाना चाहिये। किन्तु उसने ऐसा किया नहीं। उसने काल-गणना का विवाद अज्ञातवास की समाप्ति पर खड़ा किया, प्रारंभ में नहीं। इससे स्पष्ट है कि उसके विचार में अज्ञातवास प्रारंभ श्रावण शुक्ल एकादशी को होकर, ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को वह समाप्त होना चाहिये था। इसमें बीच के वैशाखोत्तर दो पूरे अधिक मास मिलाकर कुल बारह मास होते हैं। इसकी तुलना में यदि पांडव एक मास पहिले ही (आषाढ़ शु. ११ से) अज्ञातवास में जाते हैं, तो दुर्योधन को उसकी क्या चिंता?

एक स्पष्टीकरण

इस विवेचन का कोई पहलू छूट न जावे इस हेतु एक और बात का विचार करता हूं। अज्ञातवास समाप्ति समय (तीसरा) अधिक मास द्वय

चालू ही था, इस आधार पर ऊपर तिथि गणना की है। किन्तु यदि इसके बजाय, सभी अधिक मास इसके पूर्व बीत चुके थे और अब पांडव केवल पश्चाद्दर्शी हिसाब कर उनमें से अठारह दिन की रियायत चाहते थे, ऐसा किसी का आग्रह हो तो ?

फिर भी वनवास प्रारंभ तिथि ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी ही रहेगी। अन्तर इतना ही पड़ेगा कि, पांडवों की अज्ञातवास समाप्ति तिथि को वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास कृष्ण अष्टमी ऐसा न कहते सीधा वैशाख (पूर्णिमान्त ज्येष्ठ) कृष्ण अष्टमी कहना होगा। उस हालत में स्वयं महाकवि उस माह का नाम सूचित कर देते यह मैंने ऊपर कहा ही है। किन्तु इसके अलावा यदि वह अंतिम तिथि इस प्रकार अमावास्यान्त वैशाख की कृष्ण अष्टमी मानी तो अज्ञातवास के चतुर्थ मास में आश्विन का ब्रह्मोत्सव नहीं आयगा। यदि अधिक मास उस वर्ष के (अन्त के बजाय) बीच में कहीं मान लिये, तो भी वह चतुर्थ मास शायद ही सिद्ध होगा। पाठक विभिन्न विकल्प लेकर देख सकते हैं।

अज्ञातवास का अंतिम मास पूर्णिमान्त ज्येष्ठ मानने पर, उस वर्ष में अधिक मास न आने पर भी, अज्ञातवास का चतुर्थ मास भाद्रपद कृष्ण अष्टमी से आश्विन कृष्ण सप्तमी तक होगा। यद्यपि इसमें अंतिम सात दिन आश्विन के होंगे, वे कृष्ण पक्ष के होंगे। किन्तु उस आश्विन का कृष्ण पक्ष (जो अमावास्यान्त भाद्रपद का कृष्ण पक्ष होगा) भारतीय परम्परानुसार पितृश्राद्धादि के लिये विशेष रूप से नियुक्त होकर उसके अन्त में 'सर्वपितृ अमावास्या' आती है। उन दिनों में ब्रह्मोत्सव का आनंदमय समारोह नहीं मनाया जाता। फिर इसके अलावा अन्य बड़ी आपत्ति यह रहेगी कि, महाभारत के मास मूलतः पूर्णिमान्त न होकर अमावास्यान्त हैं, जिसके मुख्य प्रमाण यहाँ दिये जाते हैं।

महाभारत के मास अमावास्यान्त

महाभारत में प्रायः शुक्ल पक्ष के साथ मास का निर्देश होता है। किन्तु कृष्ण पक्ष के लिये उसके पूर्व की पूर्णिमा का उल्लेख कर माह सूचित किया जाता है। इसके कुछ उदाहरण ऊपर पृ. २९ पर दिये हैं। युद्धारम्भ तिथि घोषित करते समय भी श्रीकृष्ण कर्ण से 'सात दिन बाद आने वाली अमावास्या' (उद्योग पर्व १४२–१८) ऐसा कहते हैं, जिसके मास का उल्लेख नहीं करते। किन्तु उसके पूर्व कार्तिक (कौमुद) मास का शुक्ल पक्ष था यह महाकवि ने बता दिया है (उद्योग पर्व ८१–७)। यदि महाभारतकार के मन में पूर्णिमान्त मास होते, जो कृष्ण पक्ष से प्रारंभ होते हैं, तो वे कृष्ण पक्ष के साथ मास का नाम बताकर शुक्ल पक्ष के संबंध में केवल चालू माह का संकेत देते।

युवावस्था में पांडव हस्तिनापुर से वारणावत गये उस संबंध में महाकवि कहते हैं—

अष्टमेऽहनि रोहिण्यां प्रयाताः फाल्गुनस्य ते
वारणावतमासाद्य ददृशुर्नागरं जनम् ॥ आदिपर्व १४४-३४.

"वे (पांडव) फाल्गुन के आठवें रोज रोहिणी नक्षत्र पर (हस्तिनापुर से) निकले और यथासमय वारणावत पहुँचकर वहाँ नागरिकों से मिले।" फाल्गुन मास में (चन्द्र का) रोहिणी नक्षत्र शुक्ल पक्ष में ही आयगा, कृष्ण पक्ष में नहीं। शुक्ला अष्टमी को रोहिणी में होकर पूर्णिमा को चन्द्र फाल्गुनी (पूर्वा या उत्तरा) में हो सकता है। यहाँ इस शुक्ला अष्टमी को फाल्गुन मास का क्रमशः आठवाँ दिन बताया है; जिससे उस मास का आरंभ शुक्लपक्ष से होकर समाप्ति अमावास्या पर निश्चित है। पूर्णिमांत मास का यह तेवीसवाँ दिन होता। यदि यहाँ 'अष्टम्याम्' होता तो कहा जा सकता था कि वह संख्या केवल तिथि दर्शक होकर फाल्गुन मास के दिनों के अनुक्रम की परिचायक नहीं; किन्तु 'अष्टमे अहनि' शब्द स्पष्ट हैं।

कर्ण को युद्धारम्भ तिथि घोषित करते समय भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था कि सात रोज बाद अमावास्या आ रही है उस रोज लड़ाई प्रारम्भ की जावे। इसीके साथ वे बोले—'सौम्योऽयं वर्तते मासः सुप्रापयवसेन्धनः' (उद्योग पर्व १४२।१६) "यह सौम्य हवामान का मास चल रहा है. जिसमें चारा तथा जलाऊ लकड़ी सुलभता से प्राप्त है।" यहाँ 'अयं मासः' ये स्पष्ट शब्द हैं। उसी को 'सौम्य' तथा 'नात्युष्ण-शिशिरः' (जिसमें न विशेष गर्मी, न विशेष सर्दी होती है) कहा है। अब पूर्णिमान्त पद्धति से यह मार्गशीर्ष मास होगा, जिसका यह वर्णन नहीं हो सकता। अमावास्यान्त पद्धति से वह कार्तिक होगा जिसको सौम्य कहते हैं। मार्गशीर्ष शीतकाल में आता है। फिर उधर शीतकाल के बाद माघ माह को सौम्य कहते हैं (देखिये अनुशासन पर्व, १६७।२८, नीचे उद्धृत)।

शरशय्यापर अट्ठावन रात्रि बिताने के बाद भीष्म का निधन हुआ। देहत्याग के कुछ ही क्षण पूर्व उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—

माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यः युधिष्ठिर
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति ॥ अनुशासन पर्व १६७।२८

भीष्म निधन की यह तिथि माघ पूर्णिमा होकर समय रात्रि समाप्ति का था, यह मैंने 'महाभारत युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य' पुस्तक में बताया है। अब यह मास पूर्णिमान्त माना तो यह तिथि एवं बेला उस महिने के आखरी क्षणों की होगी। किन्तु उस हालत में वह मास 'समाप्त' होने की अवस्था में होने से उसे 'समनुप्राप्त' कैसा कहा जाता? अज्ञातवास के अन्तिम दिनों में कीचक की पापदृष्टि द्रौपदी पर गई थी उस समय अज्ञातवास वर्ष 'गतप्राय' हो गया था ऐसा महाकवि ने कहा है (विराट पर्व १४-४)। माघ मास यदि पूर्णिमान्त होता तो भीष्म के उस वचन में उसे भी 'गतप्राय' या 'समाप्तप्राय' कहा जाता। इसके

विपरीत उसे अमावास्यान्त मानने पर वह पूर्णिमा तिथि उसके ठीक बीचोबीच आकर 'समनुप्राप्त' विशेषण सार्थक होता है।

इन प्रमाणों के अलावा महाभारत में इस विषय पर कुछ स्पष्ट वचन भी हैं। भीष्म ने शरशय्या से किये महान धर्मोपदेश में पितरों के श्राद्ध के लिये उचित कृष्ण पक्ष को 'अपर' पक्ष (तथा शुक्ल पक्ष को 'पूर्व-पक्ष') कहा है—अनुशासन पर्व ८७-१६। यह निश्चित रूप से अमावास्यान्त मास पद्धति बताता है। एक और पंक्ति में कहा है, "अहः पूर्वं ततो रात्रिर्मासा शुक्लादया स्मृताः" (आश्वमेधिक पर्व, ४४-२); 'दिन प्रथम आता है, बाद में रात्रि; मास शुक्ल पक्ष से प्रारंभ होते बताये गये हैं।' कहने की आवश्यकता नहीं कि, शुक्ल पक्ष प्रथम आना याने मास अमावास्यान्त होना।

अतः इन सारे प्रमाणों को दुर्लक्षित कर महाभारत के मास पूर्णिमान्त मानना, तथा पहिले ही बीत चुके अधिकमासों के विषय में पांडव बाद में कुछ विवाद खड़ा कर रहे थे ऐसी कल्पना करना, एवं अज्ञातवास समाप्ति दिन को उस आधार पर ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी बताना सयुक्तिक नहीं होगा। उसके बजाय उस दिन तीसरा अधिक मास द्वय प्रत्यक्ष चल रहा था इस रहस्यमय आधार पर उसकी तिथि (अमावास्यान्त) ज्येष्ठ पूर्व द्वितीय अधिक मास की कृष्ण अष्टमी थी यह निष्कर्ष उचित है।

*

प्रकरण ६

वनवास का घटना क्रम

वनवास के प्रारम्भ एवं अन्त की तिथियाँ इस प्रकार निश्चित हो जाने से उनके बीच के लम्बे समय की घटनाओं का कालानुक्रम से ब्यौरा तैयार करना सम्भव हो गया है। इस बारे में भी महाभारतकार ने कई संकेत दिये हैं। वनवास का अधिकतर समय काम्यक एवं द्वैतवन में, तथा हिमालय पर बीता। उसकी विस्तृत जानकारी देते हुए महाकवि ने वनवास के वर्ष क्रमशः गिनकर बताये हैं। इस आधार पर बनाया वनवासकालीन घटना पट यहाँ प्रस्तुत है। इसमें महाभारत की गीता प्रेस आवृत्ति से आवश्यक सन्दर्भ भी दिये हैं।

प्रारंभ के चार दिन

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को सुबह हस्तिनापुर में द्यूत प्रारम्भ हुआ। उसमें पांडव हारने पर द्रौपदीवस्त्रहरण की घृणास्पद घटना हुई। किन्तु धृतराष्ट्र के वरदान से पांडव मुक्त होकर वापिस इन्द्रप्रस्थ जाने लगे। इतनेमें शकुनि आदि से परामर्श कर दुर्योधन ने धृतराष्ट्र की अनुमति से पांडवों को रास्ते से ही पुनः द्यूतार्थ आमंत्रित किया। इस पर पांडव वापिस आकर 'अनुद्यूत' हुआ; इसमें बारह वर्ष वनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास की शर्त रखी गई। पांडव फिर हारे। उसी दिन वे हस्तिनापुर से ही वनवास पर निकले।

ततः पराजिताः पार्था वनवासाय दीक्षिताः
अजिनान्युत्तरीयाणि जगृण्हश्च यथाक्रमम् ॥ सभापर्व ७७–१

"तदनन्तर (द्यूत में) पराजित पांडवों ने वनवास की दीक्षा लेकर उसी क्रम में मृगचर्म के उत्तरीय वस्त्र परिधान किये।" पतिव्रता द्रौपदी भी वनवास पर निकली। यह करीब अपराण्ह समय होगा।

वनवास के इस प्रथम दिन की रात पांडवों ने हस्तिनापुर के बाहर गंगा तट पर बिताई।

निवृत्तेषु च पौरेषु रथानास्थाय पांडवाः
आजग्मुर्जान्हवीतीरे प्रमाणाख्यं महावटम् ॥ वनपर्व १–४१
ते तं दिवसशेषेण वटं गत्वा तु पांडवाः
ऊषुस्तां रजनीं वीराः संस्पृश्य सलिलं शुचि ॥ ४२
उदकेनैव तां रात्रिमूषुस्ते दुःखकर्षिताः ॥ ४३

"(साथ में आये शोकाकुल) नागरिक (युधिष्ठिर के अनुरोध पर) लौट जाने पर पांडव रथों में बैठकर गंगा तट पर प्रमाण (कोटि) नामक महान् वटवृक्ष के पास पहुँचे–४१। संध्या के करीब उस वट के पास पहुँचकर शूर पांडवों ने पवित्र गंगाजल से आचमन आदि कर वह रात वहाँ बिताई–४२। दुखी हृदय से उन्होंने वह रात्रि केवल जल पीकर व्यतीत की"।

रात्रि समाप्ति के बाद सुबह ('प्रभातायां तु शर्वर्यां' श्लोक २-१) अर्थात् ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी को, युधिष्ठिर ने सूर्योपासना कर अक्षय पात्र प्राप्त किया; जिससे अपने साथ के निष्ठावान ब्राह्मण आदि का वनवास में भरण-पोषण हो सके।

वहाँ से पश्चिम दिशा में बढ़ते पांडवों ने कई जंगल तथा नदियाँ पार की। इस प्रकार वनवास के प्रथम तीन दिन बिताकर चौथे दिन (ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी को) मध्य रात्रि के करीब वे काम्यक वन में आ पहुँचे; जैसा कि विदुर ने बाद में धृतराष्ट्र को बताया—

इतः प्रयाता राजेन्द्र पाण्डवा द्यूतर्निजिताः
जग्मुस्त्रिभिरहोरात्रैः काम्यकं नाम तद् वनम् ॥ ११-३
रात्रौ निशीथे त्वाभीले गतेऽर्ध समये नृप
प्रचारे पुरुषादानां रक्षसां घोरकर्मणाम् ॥ ४

"राजेन्द्र धृतराष्ट्र, द्यूत में हारे पाण्डव यहाँ से (हस्तिनापुर से) चले जाने के तीन दिन-रात पश्चात् काम्यक वन में पहुँचे—३. राजन्, तब आधी रात का भयानक समय था, जब घोरकर्मा नरभक्षी राक्षस विचरते रहते हैं—४"। बीच में गयी तीन दिन-रातें इस प्रकार थी— एकादशी की रात्रि; द्वादशी का दिन एवं रात्रि; त्रयोदशी का दिन एवं रात्रि; चतुर्दशी का दिन ।

प्रथम काम्यक निवास

काम्यक में प्रवेश करते ही भीम ने किर्मीर राक्षस का वध किया । यहाँ महाकवि ने उस समय के ऋतुमान की मार्मिक सूचना दी है—

तस्मिन् क्षणेऽथ प्रववौ मारुतो भृशदारुणः
रजसा संवृतं तेन नष्टज्योतिरभून्नभः ॥ ११-१३

"उस समय प्रचंड आँधी प्रारम्भ हुई, जिससे उड़ी धूल से आच्छादित आकाश का (चन्द्र एवं तारों का) प्रकाश नष्ट हो गया ।" क्या बालुका-मय आँधी का यह उल्लेख ठीक ग्रीष्म ऋतु का संकेत देकर ऊपर प्रस्थापित वनवास प्रारम्भ तिथि की एक और पुष्टि नहीं करता ? आदिपर्व में एक स्थान पर कहा भी है कि इस ग्रीष्म ऋतु में उस प्रदेश में जोर की हवा चलती है । 'जंघावातो ववौ चास्य शुचिशुक्रागमे यथा' (आदि पर्व १५०-२), अर्थात् "(लाक्षागृह से अपने सब भाई तथा माता कुन्ती को कंधे पर उठाकर भीम चल रहे थे तब) उनकी जांघों के शीघ्र संचालन के कारण वेगवान वायु बहने लगा, जैसा शुचि (ज्येष्ठ) तथ शुक्र (आषाढ़) मास के आगमन पर चलता है ।" बल्कि वनवास से इन प्रथम तीन दिनों में पाण्डवों ने कई नदियाँ पार की, यह बात भी आश्विन शुक्ल पक्ष की अपेक्षा ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष से ही अधिक सुसंगत है ।

इसके बाद ज्येष्ठ का कृष्ण पक्ष आया । तब तक वनवास का समाचार द्वारका पहुँच चुका था । शास्व से युद्ध कर श्रीकृष्ण द्वारका वापिस आये तब सात्यकि ने उन्हें वह बताया (१३-१५) । वह सुनकर

श्रीकृष्ण पांडवों से मिलने काम्यक वन में आये । उसी समय धृष्टद्युम्न आदि अन्य स्वजन भी वहाँ आये थे । श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को सान्त्वना दी, और सुभद्रा तथा अभिमन्यु को साथ लेकर वे द्वारका वापिस लौटे । द्रौपदी पाण्डवों के साथ ही रही । किन्तु उसके पुत्रों को धृष्टद्युम्न अपने साथ ले गया; बाद में श्रीकृष्ण ने उन्हेंभी द्वारका बुला लिया (१८३-२४ से ३३) ।

द्वैतवन में प्रथम निवास

श्रीकृष्ण के चले जाने पर पाण्डव काम्यक वन से द्वैतवन में आकर (२३-१,२) द्वैतवन सरोवर पर गये (२४-१०,१२) । यहाँ भी महाकवि ने एक महत्वपूर्ण काल सूचक संकेत दिया है,जिसका विवेचन मैंने पूर्व प्रकरण में किया है । वहां बताये अनुसार यह समय 'तपात्यय' यानि ग्रीष्म ऋतु की समाप्ति के लगभग था । अमावास्यान्त मासानुसार भी ग्रीष्म का अन्त तथा वर्षा ऋतु का प्रारम्भ आषाढ़ कृष्ण पक्ष में माना जा सकता है । अतः इस समय आषाढ़ मास चल रहा था ।

इस द्वैतवन निवास में पाण्डवों ने पितृश्राद्धादि कर्म यथाविधि किये (२५-३) । यह भी अमावास्यान्त भाद्रपद का कृष्ण पक्ष सूचित करता है । इसी निवास काल में महर्षि व्यास ने आकर (अध्याय ३६) युधिष्ठिर को प्रतिस्मृति विद्या का उपदेश करते हुए आदेश दिया कि, युधिष्ठिर वह विद्या अर्जुन को सिखा दे, जिससे वह इन्द्रलोक जाकर अस्त्रविद्या प्राप्त कर सके । व्यास ने यह भी कहा कि, पाण्डवों के द्वैत-वन मे रहने से वहाँ शिकार द्वारा पशुओं की काफी हानि हो चुकी है, तथा वहाँ के तापसियों को भी नित्य कर्मों में कुछ कठिनाई आ रही है, इसलिये पाण्डव द्वैतवन का प्रदेश छोड़कर शीघ्र ही अन्यत्र चले जावें ।

तदनुसार पाण्डव द्वैतवन से वापिस काम्यक वन में चले गये । उस समय मार्गशीर्ष मास अनुमानित है । क्योंकि (आगे बताये अनुसार)

उन्होंने इस बार काम्यक वन में पाँच वर्ष निकाले, जो मार्गशीर्ष में समाप्त हुए। अतः काम्यक में इस द्वितीय प्रवेश का मास भी मार्गशार्ष मानना उचित होगा।

इस प्रकार पाण्डवों का द्वैतवन में यह प्रथम निवास मार्गशीर्ष तक चला। वनवास के प्रथम वर्ष के छः माह यहाँ तक बीते थे।

द्वितीय काम्यक निवास (साथ में अर्जुन का इंद्रलोक निवास)

काम्यक पहुँचने पर कुछ थोड़े दिनों में ही युधिष्ठिर ने अर्जुन को प्रतिस्मृति विद्या दी (३६-४४, ३७-१ से ६); उसी रोज (देखिये ३७-१६) अर्जुन ने युधिष्ठिरादि से बिदा लेकर काम्यक वन से प्रस्थान किया। बाद के संकेत देखते हुए उसका यह प्रस्थान पौष मास में मानना चाहिये। वह हिमालय की ओर गया। वहाँ गंधमादन पर्वत लाँघकर इन्द्रकील नामक स्थान पर पहुँचा, जहाँ चार मास उग्र तपस्या करने के बाद उसे शिव का दर्शन हुआ। फिर वह इन्द्रलोक गया। उसका इन्द्रलोक निवास पांच वर्ष होकर ज्येष्ठ में समाप्त हुआ था; अतः वह इन्द्रलोक पहुँचा तब ज्येष्ठ मास था। इस ज्येष्ठ मास में वनवास का प्रथम वर्ष समाप्त होता है; तथा काम्यक वन में युधिष्ठिरादि से अर्जुन अलग हुआ उसे छः मास होते हैं।

इधर युधिष्ठिर, भीम, नकुल तथा सहदेव का द्रौपदी सहित काम्यक निवास चालू ही रहा। अर्जुन के विरह में उन्होंने वहाँ पांच वर्ष बिताये।

> **तथा तेषां वसतां काम्यके वै**
> **विहीनानामर्जुनेनोत्सुकानाम्**
> **पञ्चैव वर्षाणि तथा व्यतीयु-**
> **रधीयतां जपतां जुव्हतां च ॥ ५०-१२**

"इस प्रकार काम्यक वन में निवास करते हुए उन्होंने (चार पांडव एवं द्रौपदी ने) बिना अर्जुन के तथा उसे फिर अपने साथ पाने उत्सुकता से पांच साल व्यतीत किये; इस सारे समय में उनकी ज्ञानसाधना, तप और यज्ञादि कर्म बराबर चलते रहे"। इसके बाद फिर मार्गशीर्ष के कृष्ण पक्ष में वे वहाँ से तीर्थ यात्रा पर निकले। तब तक वनवास के साढ़े पाँच साल पूरे हो गये थे; तथा अर्जुन के प्रत्यक्ष इन्द्रलोक निवास के साढ़े चार साल।

इस काम्यक निवास के दरम्यान वनवास के चतुर्थ वर्ष में भाद्रपद के बाद दो अधिकमास आये थे, जिनका उल्लेख पूर्व में मैंने किया है।

तीर्थ यात्रा एवं अर्जुन का पुनर्मिलन

तीर्थ यात्रा के लिये प्रस्थान की तिथि महाकवि ने इस प्रकार बताई है।

> **धौम्येन सहिता वीरास्तथा तैर्वनवासिभिः**
> **मार्गशीर्ष्यामतीतायां पुष्येण प्रययुस्ततः ॥ ९३-२६**

"मार्गशीर्ष पूर्णिमा के बाद चन्द्र पुष्य नक्षत्र में था तब वे वीर (पांडव) कुलगुरु धौम्य एवं अन्य तपस्वियों के साथ (तीर्थ यात्रा पर) निकले।" अर्थात यह मार्गशीर्ष (अमावास्यान्त) मास के कृष्ण पक्ष की करीब तृतीया थी। मार्गशीर्ष पूर्णिमा को चन्द्र मृग नक्षत्र में (या उसके लगभग) होता है, जहाँ से पुष्य तीन स्थान आगे है।

इस प्रस्थान के पूर्व युधिष्ठिर ने अधिकतर अनुगामी, जो अभी तक निष्ठापूर्वक साथ थे, वापिस हस्तिनापुर को लौटा दिये (९२-२५); और फिर—

> **ततः कुन्तीसुतो राजा लघुभिर्ब्राह्मणैः सह**
> **लोमशेन च सुप्रीतस्त्रिरात्रं काम्यकेऽवसत् ॥ ९२-२७**

"तदनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर काम्यक वन में ऋषि लोमश तथा कुछ थोड़े से ब्राह्मणों सह और तीन रात प्रसन्नता से रहे"। इससे भी सूचित है कि पूर्णिमा को परिवार वापिस भेज दिया, और बाद में

(पूर्णिमा, प्रतिपदा तथा द्वितीया की तीन रातें वहाँ बिताकर) कृष्ण तृतीया को युधिष्ठिर ने तीर्थ यात्रा पर प्रस्थान किया।

यात्रा रथों में प्रारम्भ हुई। पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम भारत के तीर्थों की यात्रा कर वे उत्तर में हिमालय पहुँचे, जहाँ पैदल चढ़ाई प्रारंभ हुई। यह माघ शुक्ल पक्ष अनुमानित है। इस समय अर्जुन वियोग के पांच वर्ष हो चुके थे, जैसा कि युधिष्ठिर ने कहा—

पंचवर्षाण्यहं वीरं सत्यसंधं धनंजयम्
यन्न पश्यामि बीभत्सुं तेन तप्ये वृकोदर ॥ १४१-७

"भीम, सत्यप्रतिज्ञ वीर अर्जुन को न देख मुझे पांच वर्ष हो चुके हैं, इससे मैं दुःख सन्तप्त हूं"। यहाँ अर्जुन के काम्यक वन से प्रयाण से ही समय गिना है, यद्यपि कहीं-कहीं महाकवि ने अर्जुन के इन्द्रलोक पहुँचने के समय से गणना की है।

हिमालय में बदरिकाश्रम पहुँचने पर पाण्डव वहाँ छः रात्रि रहे। (१४५-५४; १४६-१)। फिर दूसरे रोज भीम की हनुमान से भेंट हुई (अध्याय १४६ से १५१)।

वहाँ से पाण्डव थोड़े दिन के लिये सौगन्धिक वन में जाकर (१५५-३४) वापिस बदरिकाश्रम आये। उस मुकाम में जटासुर वध की घटना हुई।

इधर अर्जुन से मिलने के लिये युधिष्ठिर अत्यन्त उत्सुक थे। इस संदर्भ में वे फिर कहते हैं—

समाश्चतस्त्रोऽभिगताः शिवेन चरितां वने
कृतोद्दशः स बीभत्सुः पञ्चमीमभितः समाम् ॥ १५८-३
कृतश्च समयस्तेन पार्थेनामिततेजसा । ८
पंचवर्षाणि वत्स्यामि विद्यार्थीति पुरा मयि ॥ ९

"वन में कुशलपूर्वक विचरण करते हमें चार साल बीत गये हैं; (इस) पांचवें साल में वापिस आने का अर्जुन ने आश्वासन दिया था–३ अमित पराक्रमी वीर अर्जुन ने उस समय निश्चित कहा था कि मैं (इन्द्रलोक में) पांच साल (अस्त्रविद्या के) अध्ययनार्थ निवास करूँगा-८, ९"। यहाँ उल्लेखित चार वर्ष अर्जुन के इन्द्रलोक निवास के पांच वर्षों में से हैं, जिनमें से पांचवां वर्ष इस समय चालू था; इसीलिये युधिष्ठिर की चिन्ता एवं उत्सुकता चरम सीमा पर पहुँच गई थी।

बदरिकाश्रम से पांडव और ऊपर चढ़े। सत्रह दिन में वे वृषपर्वाश्रम पहुँचे (१५८-१८), जहाँ वे सात दिन ठहरे (१५८-२२, २३)। वहीं पर उन्होंने अपना भारी सामान रख दिया। चार दिन बाद वे गंधमादन शिखर पर आर्ष्टिषेण आश्रम में पहुँचे (१५८-३१, १०३)। वहाँ वे कुछ मास रहे (१६०-१२)। वहाँ उन्हें कुबेर दर्शन हुआ; और उसके एक माह बाद (ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष में) अर्जुन के इन्द्रलोक निवास का पांचवां वर्ष समाप्त होकर अर्जुन वापिस लौटकर उन्हें मिला।

तथा निवसतां तेषां पंचमं वर्षमभ्यगात्
शृण्वतां लोमशोक्तानि वाक्यानि विविधान्युत ॥ १६०-१०

"वहाँ निवास करते हुए तथा ऋषि लोमश से विविध (धार्मिक) कथा श्रवण करते हुए उन्होंने (अर्जुन के इन्द्रलोक निवास का) पांचवां साल बिताया।" वैसे वनवास काल के अब तक छः साल पूर्ण हो रहे थे।

गंधमादन पर चार साल

इसके बाद अर्जुन सहित सभी पांडवों ने गंधमादन पर्वत पर ही कुबेर लोक में चार और वर्ष बिताकर वनवास के दस वर्ष पूर्ण किये।

समेत्य पार्थेन यथैकरात्रम्
ऊषुः समास्तत्र तदा चतस्रः

पूर्वाश्च षट् ता दश पाण्डवानां
शिवां बभूवुर्वसतां वनेषु ।। १७६-५

"फिर वे वहाँ (कुबेरलोक में गंधमादन पर्वत पर) अर्जुन के साथ चार साल रहे, जो पूरा समय उन्हें केवल एक रात्रि के समान प्रतीत हुआ। पहिले के छः साल मिलाकर पाण्डवों ने वनों में निवास करते हुए (अभी तक) कुल दस वर्ष सकुशल बिताये।"

वनवास प्रारम्भ ज्येष्ठ में होने से उसका वर्ष ज्येष्ठ में समाप्त होता था। फिर वनवास के छः वर्ष पूर्ण होने के साथ ही अर्जुन के इन्द्रलोक निवास के पांच वर्ष पूर्ण हुए; इस प्रकार उसका वर्ष भी ज्येष्ठ में समाप्त होता था। इसलिये अर्जुन के उस इन्द्रलोक निवास का प्रारम्भ भी ज्येष्ठ में माना है, जो अन्य सारी कालगणना से सुसंगत है।

गंधमादन पर इस निवास के दरम्यान वनवास के नवम वर्ष में आषाढ़ के बाद दो अधिकमास आये थे।

वनवास का ग्यारहवां वर्ष

इस मास के आरम्भ में भीम ने युधिष्ठिर से कहा—

एकादशं वर्षमिदं वसामः
सुयोधनेनात्तसुखाः सुखार्हाः
तं वंचयित्वाधमबुद्धिशीलम्
अज्ञातवासं सुखमाप्नुयाम ।। १७६-८

"सुखोपभोग के पात्र होते हुए भी दुर्योधन द्वारा सुखोपभोग से वंचित किये गये (अवस्था में) हमारा यह ग्यारहवां वर्ष व्यतीत हो रहा है; (मुझे विश्वास है कि) उस अधमबुद्धि वाले (दुर्योधन) से हमारा पता गुप्त रख कर हम अज्ञातवास समय भी सकुशल बिता देंगे।"

इस पर पाण्डव गंधमादन से वापिस नीचे उतरने लगे। बदरिकाश्रम में वे फिर एक मास रुके।

ततः क्रमेणोपययुर्नृवीरा
यथागतेनैव पथा समग्राः
विहृत्य मासं सुखिनो बदर्यां
किरातराज्ञो विषयं सुबाहोः ।। १७७-११

"फिर वे नरवीर बदरिकाश्रम में एक मास सानन्द विहार कर, जिन मार्गों से वे आये (चढ़े) थे क्रमशः उन्हीं मार्गों से (वापिस चल कर) किरात नरेश सुबाहु के राज्य में पहुँचे।" ऊपर जाते समय सुबाहु नगर में रखे अपने रथ एवं भारी सामान वापिस लेकर पाण्डव द्वैतवन के विशाखयूप वन में आये। गंधमादन से वहाँ तक का प्रवास करीब ज्येष्ठ मध्य से श्रावण तक हुआ होगा। स्वाभाविक ही चढ़ने की तुलना में उतरने में समय कम लगा।

द्वैतवन में द्वितीय निवास

विशाखयूप वन में वे एक वर्ष रहे (१७७-१७)। इसी निवास में ज्येष्ठ मास में वनवास का ग्यारहवां वर्ष समाप्त होकर बारहवां प्रारम्भ हुआ। विशाखयूप का एकवर्षीय निवास वर्षा ऋतु के साथ समाप्त हुआ।

तथा बहुविधाकारा प्रावृण्मेघानुनादिता
अभ्यतीता शिवा तेषां चरतां मरुधन्वसु ।। ८२-९

"वे मरुभूमि में विचरण कर रहे थे तब मेघगर्जनायुक्त तथा विविध दृश्यों द्वारा व्यक्त मंगल वर्षा ऋतु बीत गयी।" इसी लिये विशाखयूप निवास वर्ष का आरम्भ ऊपर श्रावण के करीब माना है। इस प्रकार वनवास के बारहवें वर्ष में ज्येष्ठ से लेकर तीन-चार महिने विशाखयूप वन की मरुभूमि में व्यतीत हुए। इसी समय अजगर देहधारी नहुष की मुक्ति हुई (अध्याय १७८ से १८१)।

वहाँ से पाण्डव (द्वैतवन में ही) द्वैतवन सरोवर पर चले आये (१७७-२१); जहाँ वे वनवास के प्रथम वर्ष में भी कुछ मास ठहरे थे।

यहाँ शरद ऋतु बिता कर वे कार्तिक मास की पूर्णिमा तक रहे (१८२-११, १६ ऊपर उद्धृत)।

इसी दरम्यान वनवासी पाण्डवों को जानबूझकर नीचा दिखाने के दुष्ट हेतु से दुर्योधन की द्वैतवन में घोषयात्रा हुई; जिसमें गंधर्वों द्वारा पराजित कौरवों को पांडवों ने ही अपने पराक्रम से उदारतापूर्वक मुक्त किया।

कार्तिक कृष्ण पक्ष में पाण्डव वहाँ से तीसरी बार काम्यक वन चले गये।

तमिरत्राभ्युदये तस्मिन् धौम्येन सह पाण्डवाः
सूतैः पौरोगवैश्चैव काम्यकं प्रययुर्वनम् ।। १८२-१८

"(कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात) उस कृष्ण पक्ष के प्रारम्भ पर पांडव महर्षि धौम्य, सारथिगण, रसोइये आदि के साथ काम्यक वन गये।" इस प्रकार द्वैतवन का द्वितीय वास करीब एक संवत्सर (विशाखयूप में) तथा दो मास (द्वैतवन सरोवर पर) हुआ। फिर भी महाकवि ने यहाँ किया एक छोटासा कालगणनात्मक कूट देखिये। द्वैतवन में पाण्डवों की शिकार से भारी संख्या में वहाँ के पशु मारे जाने पर बचे खुचे जीवों ने युधिष्ठिर से दया की याचना की, तब उसने अपने भाइयों से कहा—

ते सत्यमाहुः कर्तव्या दयास्माभिर्वनौकसाम्
साष्टमासं हि नो वर्षं यदेतद्रुपयुङ्क्ष्महे ।। २५८-१२

"उन (पशुओं) का निवेदन ठीक ही है; हमें इन वन्य जीवों पर दया करनी चाहिये; हमारा यहाँ (द्वैतवन में) निवास एक वर्ष आठ मास हो चुका है।" यहाँ युधिष्ठिर एक वर्ष आठ मास किस प्रकार गिन रहे हैं? बात यह है कि, वे उनके द्वारा उस वन में की गई कुल शिकार का हिसाब लगाने हेतु, द्वैतवन में प्रथम निवास का समय भी जोड़कर अब तक का कुल समय बता रहे हैं। वन्य पशुओं की याचना का निमित्त कर महाकवि ने कितनी सूक्ष्मता से यहाँ कालगणना कर रखी है!

तृतीय काम्यक निवास

अभी कहे अनुसार कार्तिक कृष्ण पक्ष में पाण्डव द्वैतवन से फिर काम्यक वन में तृणबिंदु सरोसर पर आये। यह उनका वनवासकालीन अन्तिम काम्यक निवास था। वनवास का बारहवां वर्ष चल रहा था। कार्तिक कृष्ण से पाण्डव यहाँ अनुमानतः माघ मास तक रहे।

पाण्डवों के इस काम्यक निवास में ये विशेष घटनायें हुईं। श्रीकृष्ण सत्यभामा की पाण्डवों से भेंट (अध्याय १८३, २३३ से २३५)। मुनिवर मार्कंडेय द्वारा विविध कथोपदेश(अध्याय १८३ से २३२; २७३से२९९)। दुर्योधन के वैष्णव यज्ञार्थ कर्ण का दिग्विजय (अध्याय २५३ से २५५)। जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का अपहरण, जब पाण्डव शिकार पर गये होने से कुटिया पर द्रौपदी अकेली थी; शीघ्र ही पाण्डवों ने द्रौपदी को मुक्त कर जयद्रथ को हास्यास्पद सिरमुंडन द्वारा अपमानित करते हुए छोड़ दिया (अध्याय २६४ से २७२)।

तृतीय द्वैतवन निवास

जयद्रथ प्रसंग के बाद पाण्डवों ने काम्यक वन छोड़ दिया और वे फिर द्वैतवन में वापिस चले आये। यह उनका तृतीय एवं अन्तिम द्वैतवन निवास था।

एवं हृतायां कृष्णायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम्
विहाय काम्यकं राजा सह भ्रातृभिरच्युतः ।। ३११-२
पुनर्द्वैतवनं रम्यमाजगाम युधिष्ठिरः । ३

"इस प्रकार द्रौपदी का (जयद्रथ द्वारा) अपहरण होने पर (यद्यपि द्रौपदी की तुरन्त मुक्तता हो गई) अत्यन्त दुःखपीड़ित तथा धर्म मार्ग से कभी न हटने वाले राजा (युधिष्ठिर) काम्यक वन छोड़कर अपने भाइयों सहित पुनः रमणीय द्वैतवन में चले आये।"

इस द्वैतवन निवास का आरम्भ मैंने फाल्गुन में अनुमानित किया है। तब से बारहवें वर्ष के अन्त तक, अर्थात अज्ञातवास प्रारम्भ तक

पाण्डव यहीं रहे। अज्ञातवास प्रारम्भ आषाढ़ शुक्ल में हुआ था यह प्रकरण ५ में बताया है।

प्रकट वनवास के इस अन्तिम कालखंड में निम्न विशेष घटनाएँ हुईं।

दुर्योधन का वैष्णव यज्ञ सम्पन्न हुआ (अध्याय २५६-२५७)। दुःशासन अपने दूत से कहता है—

गच्छ द्वैतवनं शीघ्रं पाण्डवान् पापपूरुषान्
निमन्त्रय यथान्यायं विप्रांस्तस्मिन् वने तदा ॥ २५६-८

"दूत, शीघ्र द्वैतवन जाकर पापी पाण्डवों को तथा उस वन के निवासी ब्राह्मणों को यथोचित रीति से निमंत्रित करो।" यह वैष्णव यज्ञ राजसूय यज्ञ के समतुल्य था (२५५-१५, २०), जिसकी मुख्य अभिषेचनीय तिथि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा थी यह उल्लेख ऊपर आया ही है। इसी प्रकार कुरुक्षेत्र पर हुए महायुद्ध के बाद युधिष्ठिर ने किये अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ भी फालगुन पूर्णिमा को होकर (आश्वमेधिक पर्व ८५-८) मुख्य समारोह चैत्र पूर्णिमा को था (उक्त पर्व ७६-२५,८१-२३, ८४-८४)। अतः दुर्योधन के वैष्णव यज्ञ का समय भी फाल्गुण-चैत्र में माना है।

दुर्वासा द्वारा सत्त्वपरीक्षा

इसी दरम्यान दुर्योधन ने दुर्वासा ऋषि को प्रसन्न कर पांडवों की सत्त्वपरीक्षा लिने उन्हें प्रेरित किया, जिसमें अन्ततः श्रीकृष्ण प्रभाव से स्वयं दुर्वासा ही फजीत हुए (अध्याय २६२, २६३)। इसका स्थलकाल अस्पष्ट है, फिर भी यह घटना पांडवों के तृतीय द्वैतवन निवास की होने के संकेत दिखते हैं।

एक दिन पांडव भोजन कर आराम से बैठे थे तब दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यों सहित अचानक वहाँ पहुँचे। युधिष्ठिर ने उनका स्वागत कर कहा कि, आप स्नानादि नित्य कर्म कर भोजन के लिए पधारिये। तदनुसार दुर्वासा नदी पर स्नान के लिये गये। किन्तु

इधर बिचारी द्रौपदी उस समय यह भोजन किस प्रकार जुटाना इस घोर चिंता में पड़ी और उसने श्रीकृष्ण का आर्तभाव से ध्यान किया। तब रुक्मिणी श्रीकृष्ण के पास ही शय्या पर सो रही थी (२६३–१८), जहाँ से तत्काल उठकर वे द्रौपदी के सहायतार्थ आये। अर्थात् यह रात्रि समय था। इसके अलावा इस संबंध में 'निशीथ' (आधी रात का समय) ऐसा एक उल्लेख भी आता है (२६३–४०)।

दूसरी विशेष बात यह है कि, दुर्वासा दस हजार शिष्यों सहित उस समय जिस 'देवनदी' पर (२६३–२८, ३७) स्नान करने गये थे वह पुण्यमयी सरस्वती होनी चाहिये। फिर जब श्रीकृष्ण प्रभाव से दुर्वासा तथा उनके शिष्यों को स्नान करते-करते ही पूर्ण उदरतृप्ति का अनुभव होकर वे वहाँ से भाग गये, तब उनको भोजनार्थ बुलाने नदी पर आये सहदेव ने उन्हें न देखकर उनकी वहीं आसपास तीर्थों में खोज की, तथा वहाँ के तपस्वियों से पूछताछ भी की ऐसा महाभारतकार कहते हैं। अर्थात् उस स्थान पर सरस्वती का वह किनारा होना चाहिये जहाँ काफी तीर्थस्थान होकर कई तपस्वी, मुनि आदि रहते थे। और यह स्थान पांडवों के निवास स्थान के समीप ही होना चाहिये; क्योंकि भोजन के पूर्व, और वह भी रात्रि समय में, दुर्वासा और उनका शिष्य समुदाय स्नान के लिये जंगलों में कहीं बहुत दूर जाता नहीं। ये सारे संकेत उस समय पांडवों का द्वैतवन निवास सूचित करते हैं।

यद्यपि काम्यक वन का भी कुछ अंश सरस्वती नदी से लगकर था (वनपर्व ५–३, ३६–४१), फिर भी तृतीय काम्यक निवास के समय पांडव उस वन के विशेषतः उस प्रदेश में थे जो मरुभूमि के शिरस्थान पर होकर जहाँ तृणबिंदु सरोवर था (२५८–१३)। वहाँ से सरस्वती नदी इतनी पास होने का उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत द्वैतवन में जिस द्वैतवन सरोवर पर पांडव ठहरे थे उसके निकट ही सरस्वती की 'पुण्यतीर्थी' (वनपर्व १८२–१४) अर्थात् पावन तीर्थस्थलों से लगी हुई

धारा बहती थी। वहाँ कई तपस्वी भी रहते थे, तथा सरस्वती का दृश्य वहाँ विशेष सौम्य एवं प्रसन्न था (२४–१०, २४–२४, २५–१, १७७–२१ से २४)।

इन्द्र द्वारा कर्णकवचकुण्डल हरण

इस समय की एक अन्य घटना इन्द्र द्वारा कर्ण के कवच कुण्डल मांग ले जाने की है (अध्याय ३०० से ३०२; ३०६, ३१०)।

द्वादशे समतिक्रान्ते वर्षे प्राप्ते त्रयोदशे
पाण्डूनाम् हितकृच्छक्रः कर्णं भिक्षितुमुद्यतः ॥ ३००–५

"जब (वनवास का) बारहवाँ वर्ष समाप्त होकर तेरहवां प्राप्त हो रहा था, तब पांडवों के हितकर्ता इन्द्र ने कर्ण से (उसके कवच कुण्डलों की) भिक्षा माँगने का विचार किया।" किन्तु इस घटना के समय तेरहवें वर्ष का प्रत्यक्ष प्रारंभ संभव नहीं। क्योंकि तेरहवाँ वर्ष प्रारंभ होते ही पांडव अज्ञातवास में गुप्त हो गये थे, और उक्त घटना की माहिती उन्हें मार्कंडेय मुनि द्वारा अज्ञातवास के पूर्व ही प्राप्त हो गई थी। पांडवों को कर्ण के कवच कुण्डल हरण की घटना कब और कैसे ज्ञात हुई ऐसा जनमेजय ने पूछने पर वैशंपायन उत्तर देते हैं—

लब्ध्वा कृष्णां सैन्धवं द्रावयित्वा
विप्रैः सार्धं काम्यकादाश्रमात् ते
मार्कण्डेयाच्छ्रुतवन्तः पुराणं
देवर्षीणां चरितं विस्तरेण ॥ ३१०–४२

"(पांडवों ने यह तब सुना था जब) द्रौपदी को फिर से प्राप्त कर तथा जयद्रथ को काम्यक आश्रम से भगाकर उन्होंने (साथी) ब्राह्मणों सह मार्कंडेय मुनि से पुराणों में वर्णित देवताओं तथा ऋषियों के (या देवर्षियों के) चरित्र विस्तार से श्रवण किये थे।" यदि इसका अर्थ यह किया जावे कि उस घटना की जानकारी मार्कंडेय मुनि ने पांडवों को काम्यक वन में ही दी थी, तो कवचकुण्डल हरण का काल पौष माघ में

मानना पड़ेगा। किन्तु उस समय का वर्णन 'द्वादशे समतिक्रान्ते वर्षे प्राप्ते त्रयोदशे' ऐसा नहीं किया जा सकेगा।

वस्तुतः इस श्लोक में इतना ही कहा है कि, पांडवों ने जयद्रथ को अपमानित कर काम्यक आश्रम से भगाने के पश्चात् महर्षि मार्कंडेय ने जो पुराण कथाएँ उन्हें सुनायी, उनके साथ यह घटना भी बताई। यह नहीं कहा है कि यह कथन काम्यक में ही हुआ था। अतः इसका अर्थ यह दिखता है कि, पांडव काम्यक से द्वैतवन आने पर वहाँ भी मुनि मार्कंडेय पांडवों को कथाएँ श्रवण कराते रहे, जिनके साथ उस घटना की जानकारी दी। इस प्रकार यह घटना वैशाख की होकर उसके कुछ ही रोज बाद मार्कंडेय मुनि ने पांडवों को उस घटना की जानकारी दी, जब वे द्वैतवन में आ गये थे। इस समय वनवास का बारहवां वर्ष समाप्त हो रहा था तथा तेरहवें का प्रारंभ आसन्न था।

यक्ष प्रश्न की घटना

इस समय की अंतिम प्रमुख घटना यक्ष प्रश्न तथा उनको युधिष्ठिर ने दिये मार्मिक उत्तर यह है (अध्याय ३११ से ३१४)। यहाँ कहाकवि ने फिर वनवास की कालगणना का स्पष्ट उल्लेख किया है। यक्ष रूपी साक्षात् धर्म को अपने उत्तरों से पूर्ण संतुष्ट कर अपने भाइयों के प्राण वापिस प्राप्त करने के बाद, वर मांगते हुए युधिष्ठिर कहते हैं—

वर्षाणि द्वादशारण्ये त्रयोदशमुपस्थितम्
तत्र नो नाभिजानीयुर्वसतो मनुजाः क्वचित् ॥ ३१४–१५

"वनवास के (हमारे) बारह वर्ष होकर तेरहवाँ उपस्थित है। (कृपया ऐसा वर दीजिये कि) उस (वर्ष) में (गुप्त रूप से) रहने वाले हमें कोई भी मानव पहचान न सके।" धर्मदेव ने भी प्रसन्न होकर वर प्रदान करते कहा—

वर्षं त्रयोदशमिदं मत्प्रसादात् कुरुद्वहाः
विराटनगरे गूढाः अविज्ञाताश्चरिष्यथ ॥ ३१४–१८

"कुरुकुल वंशज पांडवों, मेरी कृपा से तुम यह तेरहवाँ वर्ष विराट नगर में गुप्त रूप से रहकर बिना किसी से पहिचाने बिताओगे।" इससे भी स्पष्ट है कि यह यक्ष प्रश्न की घटना बारहवें वर्ष की समाप्ति के निकट की थी।

महाभारत के विशाल कथावर्णन में छोटी-छोटी बातों पर भी महाकवि का सूक्ष्म सुसंगत ध्यान देखिये। जयद्रथ द्वारा द्रौपदीहरण से त्रस्त होकर पांडव काम्यक वन से फिर द्वैतवन में आये, तब उन्होंने वहाँ केवल फलाहार ही किया।

अनुभुक्तफलाहाराः सर्व एव मिताशनाः
न्यवसन् पांडवास्तत्र कृष्णया सह भार्यया ॥ ३११-४

इसका कारण ? द्वैतवन का द्वितीय निवास समाप्त करते हुए युधिष्ठिर ने वहाँ के पशुओं को आश्वासन दिया था कि पांडव इसके बाद वहाँ शिकार नहीं करेंगे (देखिये ऊपर उद्धृत श्लोक २५८-१२)।

महाकवि की प्रतिभा क्रीड़ा

पांडव हिमालय से नीचे उतरकर विशाखयूप वन में आये तब से जो ये विविध घटनाएँ हुई, उन्हें महाकवि ने वनपर्व के उत्तरार्द्ध में बड़ी कुशलता से आपस में मिलाकर समय कूट के साथ एक स्थलकूट भी निर्माण कर दिया है ! अतः कभी-कभी एकदम पता भी नहीं चलता कि घटना काम्यक वन की है या द्वैतवन की; तथा द्वैतवन की घटना हो तो द्वितीय निवास की या तृतीय ? बात सारांश में इतनी ही है कि, हिमालय से लौटने के बाद पांडवों ने प्रकट वनवास के अंतिम दो वर्ष द्वैतवन में, काम्यक वन में और वापिस फिर द्वैतवन में बिताये थे। किन्तु इन तीन कालविभागों में हुई घटनाओं को युक्ति से आगे-पीछे कर महाभारतकार ने कथाप्रवाह में एक अजीब भँवरा-सा निर्माण किया है ! जिससे विसंगति के आभास होकर कुछ विद्वान तर्क करने लगते हैं कि, मूल महाभारत में बाद में स्थान-स्थान पर कुछ अंश

जोड़ दिये गये हों। द्वैतवन में द्वितीय निवास के वर्णन से तृतीय काम्यक निवास की ओर बढ़ने के बाद, एकदम बीच में ही जनमेजय के प्रश्न का निमित्त कर कथा का ओघ फिर उसी द्वितीय द्वैतवन निवास तरफ मुड़ता है। वैसे ही तृतीय द्वैतवन निवास का कथन शुरू कर बीच में ही काम्यक से सम्बन्धित प्रसंगों के उल्लेख आ जाते हैं। किन्तु खूबी यह है कि स्थान-स्थान पर समय तथा स्थलसूचक उल्लेख या सूक्ष्म संकेत भी रख दिये हैं।

अज्ञातवास में कीचक वध की तिथि

प्रकट वनवास के बाद अज्ञातवास वर्ष आया। यहाँ महाभारत का वनपर्व समाप्त होकर विराट पर्व शुरू होता है। इस वर्ष की प्रथम उल्लेखनीय घटना अज्ञातवास के चतुर्थ मास में हुआ ब्रह्मोत्सव तथा भीम-जीमूत मल्लयुद्ध है। इसकी चर्चा पूर्व में की जाकर उसका आश्विन मास सिद्ध कर दिया गया है।

दूसरी विशेष घटना भीम द्वारा कीचक वध है। अब अज्ञातवास वर्ष की प्रारंभ एवं समाप्ति तिथियाँ निश्चित होने से कीचक वध की तिथि भी प्राप्त हो सकती है।

इस विषय की शुरुआत यहाँ से होती है—

वसमानेषु पार्थेषु मत्स्यस्य नगरे तदा
महारथेषु छन्नेषु मासा दस समाययुः ॥ विराट पर्व १४-१

"(इस प्रकार) महारथी पांडव मत्स्यराज (विराट) के नगर में गुप्त रूप से रहते हुए दस मास निकल गये।" इसके बाद कथा वर्णन में कीचक का प्रवेश होता है।

तस्मिन् वर्षे गतप्राये कीचकस्तु महाबलः
सेनापतिर्विराटस्य ददर्श द्रुपदात्मजाम् ॥ १४-४

"जब वह (अज्ञातवास का) वर्ष करीब-करीब समाप्त हो रहा था, विराट के सेनापति महाशक्तिशाली कीचक की (पाप) दृष्टि द्रौपदी पर

(जो दासी के रूप में थी) गई।" एक-एक दिन गिनते पांडवों की गणना में अज्ञातवास का वर्ष समाप्त होने में अब कुछ ही दिन बाकी रहे थे। और दुर्भाग्य से इसी समय बलशाली सेनापति कीचक द्रौपदी को सताने लगा। प्रसंग अत्यन्त दुर्धर था। द्रौपदी की सुरक्षा तो आवश्यक थी ही; किन्तु गुप्तता भी अत्यावश्यक थी। द्रौपदी को बचाने में पांडवों का अस्तित्व तनिक भी जाहीर हो जाता तो घोर अनर्थ हो सकता था।

भीम व द्रौपदी ने गिना शेष समय

इसी परिस्थिति में एक दिन उन्मत्त कीचक ने द्रौपदी का भीषण अपमान किया। उस रोज मध्यरात्रि में द्रौपदी रोती हुई भीम के पास पहुँची। भीम ने उसे सान्त्वना देकर कीचक वध का आश्वासन देते हुए कहा—

मा दीर्घं क्षम कालं त्वं मासमर्धं च सम्मितम्
पूर्णे त्रयोदशे वर्षे राज्ञां राज्ञी भविष्यसि ॥ २१-१७

"कुछ थोड़े ही दिन—गिनती से केवल आधा मास—और सहन करना। तेरहवाँ वर्ष पूर्ण होते ही तुम (फिर) राजाओं की (पांडवों की) रानी बनोगी।" पांडवों के अनुसार तेरहवाँ वर्ष वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास कृष्ण सप्तमी पर समाप्त होकर अष्टमी को मुक्ति दिवस था। उसके ठीक अर्धमास पूर्व का यह दिन था। अर्थात् इसकी तिथि वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास शुक्ल अष्टमी थी। यहाँ 'मासम् अर्धं' का अर्थ आधा महिना यानी पन्द्रह दिन है; 'महिना–आध महिना' नहीं, जैसा कुछ भाषांतरों में दिया जाता है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि, इस भीम-द्रौपदी संवाद के दूसरे रोज रात्रि में कीचक वध हुवा; और उसके बाद प्रातःकाल जब विराट की रानी ने द्रौपदी को वहाँ से चले जाने को कहा, तो द्रौपदी ने केवल तेरह और दिनों की मोहलत मांगी थी।

त्रयोदशाह मात्रं मे राजा क्षाम्यतु भामिनि
कृतकृत्या भविष्यन्ति गन्धर्वास्ते न संशयः ॥२४-२९

"रानीजी, मुझे तेरह और दिन राजा कृपया माफ करे (यहाँ ठहरने दे); तब तक (मेरे पति) गंधर्व निःसन्देह अपना उद्दिष्ट पूर्ण कर लेंगे (जब वे मुझे यहाँ से ले जायेंगे)।" अर्थात् इसके दो रोज पूर्व अज्ञातवास से मुक्ति को पन्द्रह दिन शेष थे; जिस को ध्यान में रखकर ही भीम ने द्रौपदी से 'मासम् अर्धं' कहा था।

वह कृष्ण पक्ष नहीं था

भीम ने कीचक वध का आश्वासन देते हुए द्रौपदी से आदेश दिया कि, वह अगले रोज रात्रि में कीचक से एकान्त मिलन निश्चित कर ले। उस समय द्रौपदी के स्थान पर स्वयं भीम जाकर गुप्त रीति से कीचक का वध करने वाला था। तदनुसार द्रौपदी ने दूसरे रोज कीचक से कहा।

यदेतन्नर्तनागारं मत्स्यराजेन कारितम्
दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम् ॥ २२-१६
तमिस्त्रे तत्र गच्छेथा गन्धर्वास्तन्न जानते। १७

"यह जो मत्स्यराज (राजा विराट) ने नृत्यगृह बनाया है, उसमें दिन के समय कन्याएँ नृत्य का अभ्यास कर रात में अपने घर चली जाती हैं—१६; वहाँ (आज) रात्रि के अंधेरे प्रहर में (आ) जाना, ताकि गंधर्वों को (जो मेरे पति हैं) इस बात का पता नहीं चलेगा।" सिद्ध है कि यह तिथि वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास की शुक्ल नवमी थी। यहाँ 'तमिस्त्रे' का आशय रात्रि के अंधेरे प्रहर में अर्थात् चन्द्रास्त के बाद ऐसा है। किंतु जिन्हें इस तिथिकी कल्पना नहीं वे उस शब्द से यह अर्थ लेते हैं कि वह रात्रि अंधेरे पक्ष की यानी कृष्ण पक्ष की थी। वस्तुतः वह शुक्ल पक्ष की नवमी होने से करीब अर्धरात्रि में चन्द्रास्त होने वाला था, और यह सोचकर ही भीम ने उसके बाद का अंधकार-पूर्ण समय निश्चित किया था। इसीलिये, जब द्रौपदी ने कीचक से वह

समय निश्चित कर उसकी खबर तुरन्त भीम को दी, तब उसने भी 'तमस्विन्याम्' शब्द का प्रयोग करते हुए फिर कहा—

अदृश्यमानस्तस्याथ तमस्विन्यामनिन्दिते
नागो बिल्वमिवाक्रम्य पोथयिष्याम्यहं शिरः
अलभ्यामिच्छतस्तस्य कीचकस्य दुरात्मनः ।। २२-३७

"निर्दोष द्रौपदी, मैं स्वयं (उसको) अदृश्य रहूंगा; और (तुझ समान) अलभ्य स्त्री की इच्छा करने वाले उस दुरात्मा कीचक पर हमला कर उसका मस्तक रात्रि की अंधेरी वेला में (रात्रि के अंधेरे प्रहर में) उस प्रकार कुचल डालूँगा, जैसे हाथी वेल का फल (कुचल डालता है)।"

जब कीचक नर्तनागार में गया वहाँ अंधेरा छा गया था, अर्थात् चन्द्र का अस्त हो गया था।

मन्यमानः स संकेतमागारं प्राविशच्च तत्
प्रविश्य च स तद् वेश्म तमसा संवृतं महत् ।। २२-४०

"(द्रौपदी ने दिये) संकेत का ख्याल कर वह (कीचक) उस भवन में गया; और सब ओर अंधकार से व्याप्त उस विशाल भवन में प्रवेश करने के बाद....(वह भीम के पास पहुँचा जो पहिले से ही वहाँ आ गया था)।" इस समय भीम ने उसका वध कर डाला।

कीचक वध से त्रस्त एवं भयभीत होकर, तथा उसके वध से द्रौपदी का किसी तरह संबंध देख, दूसरे ही दिन सुबह राजा विराट की सूचना से उसकी रानी ने द्रौपदी को वहाँ से चले जाने को कहा। यह तिथि वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास शुक्ल पक्ष की दशमी थी। ऊपर कहे अनुसार इस दिन द्रौपदी (सैरन्ध्री) ने रानी से केवल तेरह दिन और ठहरने की अनुमति मांगी। उस रोज से ठीक तेरह दिन बाद उस माह की कृष्ण सप्तमी बीतकर अष्टमी आने वाली थी। उसी की सूर्योदय बेला में अर्जुन ने अज्ञातवास समाप्त कर स्वयं को कौरवों के सामने प्रकट किया तथा अकेले युद्ध कर उन्हें परास्त किया।

इसके बाद कृष्ण दशमी को सभी पांडव द्रौपदी सहित राजा विराट के दरबार में प्रकट रूप से उपस्थित हुए। विराट ने उनका सम्मान कर, अपनी कन्या उत्तरा का अभिमन्यु के साथ विवाह निश्चित किया। पांडव विराट नगर से अस्थायी निवासार्थ उपप्लव्य चले गये। शीघ्र ही वहाँ बड़े हर्षोल्लास से उत्तरा-अभिमन्यु विवाह सम्पन्न हुआ।

यहाँ महाभारत का विराट पर्व समाप्त होता है।

*

प्रकरण ७

श्रीकृष्ण का शांतिवार्ता-प्रवास

महाभारत में विराटपर्व के बाद उद्योगपर्व आता है। उसमें श्रीकृष्ण के अन्तिम शान्ति वार्ता हेतु हस्तिनापुर प्रवास का वर्णन है। उसकी दिनगणना में भी महाकवि ने कूट रखा है। वह प्रवास कब प्रारम्भ हुआ ? वह कितने दिन चला ? श्रीकृष्ण हस्तिनापुर कब पहुँचे ? शान्तिवार्ता किस दिन हुई ? श्रीकृष्ण वापिस कब लौटे ? वे पांडवों के पास कब पहुँचे ?

श्रीकृष्ण की प्रवास के लिये संमति

अज्ञातवास समाप्ति पर पांडव विराट राज्य के उपप्लव्य नगर में चले गये। दुर्योधन ने उनका राज्य लौटाने से इन्कार करने पर दोनों ओर से युद्ध की तैयारी होने लगी। इस बीच धृतराष्ट्र ने समझौते के लिये संजय को पांडवों की ओर भेजा। किन्तु उसके साथ कोई न्यायोचित सुझाव न होने से वह व्यर्थ हुआ। फिर पांडवों ने अपना अन्तिम शान्ति प्रयास करने हेतु श्रीकृष्ण को हस्तिनापुर जाने का अनुरोध किया।

संजये प्रतियाते तु धर्मराजो युधिष्ठिरः
अभ्यभाषत दाशार्हमृषभं सर्वसात्वताम् ॥ उद्योग पर्व ७२-१

"संजय के वापिस जाने के बाद धर्मराज युधिष्ठिर ने समस्त यादवों के नायक श्रीकृष्ण (दाशार्ह)को निवेदन किया" (कि आप शान्तिवार्ता के लिये कौरवों के पास जाइये)। इस विषय में श्रीकृष्ण का पांडवों से काफी विचार-विमर्श होने के बाद श्रीकृष्ण ने वह अनुरोध मान्य कर कहा—

श्वोभूते धृतराष्ट्रस्य समीपं प्राप्य पाण्डव
यतिष्ये प्रशमं कर्तु युष्मदर्थमहापयन् ॥ ७७-१५

इस श्लोक में 'श्वोभूते' (कल होने पर) का किस बात से संबंध है ? यहां भ्रम निर्माण होता है कि, इसके दूसरे रोज ही श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुँचकर शान्तिवार्ता करने वाले थे। ठीक है कि, उन्होंने यह कहा उस दिन की रात्रिसमाप्ति पर दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने उपप्लव्य से प्रस्थान किया (देखिये श्लोक ८६-६ नीचे उद्धृत)। किन्तु आगे बताये अनुसार महाभारत में यह भी कहा है कि, प्रत्यक्ष हस्तिनापुर पहुँचने के पूर्व श्रीकृष्ण ने एक रात रास्ते में वृकस्थल में बिताई थी, जो हस्तिनापुर नगर के करीब ही था। उसके दूसरे रोज प्रातःकाल वहाँ से वे हस्तिनापुर गये, और धृतराष्ट्रादि से प्रारम्भिक भेंटवार्ता कर शेष दिन एवं वह रात्रि उन्होंने विदुर के निवास स्थान पर बितायी। उस रात्रि समाप्ति पश्चात् शान्ति वार्ता हुई। अब यदि श्रीकृष्ण उपप्लव्य से वृकस्थल एक ही दिन में पहुँचे यह प्रचलित धारणा हमने घड़ी भर मान ली (यद्यपि वास्तव में आगे स्पष्ट किये अनुसार कई दिन लगे थे), तो भी जिस रोज उन्होंने शान्ति वार्ता के लिये हस्तिनापुर जाना मान्य करते हुए 'श्वोभूते' कहा था उसके बाद तीन रातें बीतने के पश्चात् चौथे रोज शान्ति वार्ता हुई।

किन्तु हम यदि यह भी और मान लें कि श्रीकृष्ण वृकस्थल से हस्तिनापुर पहुँचे उसी दिन उनकी धृतराष्ट्र आदि से जो औपचारिक क्षेमकुशल स्वरूप वार्तालाप हुआ उसीमें शान्ति वार्ता का सूतोवाच देखा जावे, तो भी कम से कम वृकस्थल की एक रात्रि तो रहेगी ही। अर्थात् किसी भी हालत में जिस दिन श्रीकृष्ण ने वह 'श्वोभूते' वाला वचन कहा उसके दूसरे रोज तो श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुँचे भी नहीं थे।

अतः श्रीकृष्ण के उक्त वचन का आशय यह है कि कल ही यहाँ से निकलकर मैं यथाकाल धृतराष्ट्र के पास जाऊँगा और तुम्हारे हित

सुरक्षित रखते हुए शान्तिपूर्ण समझौते का प्रयास करूंगा ।" इसके लिये एक उदाहरण प्रस्तुत है। मान लीजिये किसी स्थान से रेलवे में दिल्ली पहुँचने में तीन दिन लगते हैं। अब किसी को वहां से दिल्ली जाकर कुछ जरूरी काम करना हो, तो क्या वह ऐसा सामान्य भाषा में नहीं कह सकेगा कि 'मैं कल ही दिल्ली जाकर यह काम करता हूं' ?

उपप्लव्य से प्रस्थान

इस प्रकार आश्वासन देकर दूसरे रोज श्रीकृष्ण उपप्लव्य से निकले उस समय का वर्णन करते हुए महाकवि लिखते हैं—

ततो व्यपेततमसि सूर्ये विमलवगद्‌ते
मैत्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते मृद्वर्चिषि दिवाकरे ।। ८३-६
कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे ।। ७

"तदनन्तर (रात्रि का) अंधकार नष्ट होकर तथा स्वच्छ आकाश में सूर्य का उदय होने पर उसकी कोमल (प्रातःकालीन) किरणें सर्वत्र फैल गई; उस समय मैत्र मुहूर्त पर, जब कार्तिक मास में चन्द्र रेवती नक्षत्र में था, तथा शरद ऋतु समाप्तप्राय होकर हेमंत आ रहा था" (तब श्रीकृष्ण ने प्रवास आरम्भ किया)। यह समय प्रातःकाल का था यह श्लोक ८३-९ में श्रीकृष्ण ने 'पौर्वाण्हिक कृत्य' करने का जो उल्लेख है उससे भी स्पष्ट है। यहाँ 'कुमुद' का अर्थ प्रायः सभी ने कार्तिक मास लिया है। साधारणतया किसी मास की पूर्णिमा पर चन्द्र उस मास के नाम से संबद्ध नक्षत्र में या उसके करीब रहता है। अतः कार्तिक पूर्णिमा को चन्द्रमा कृतिका में या एक नक्षत्र पीछे भरणी में या आगे रोहिणी में होगा।

किन्तु इसके बाद आने वाला कृष्ण पक्ष तेरह दिन का था, अर्थात् उससें दो तिथिलोप थे; तथा जिस दिन शान्तिवार्ता हुई उस दिन चन्द्र पुष्य नक्षत्र में था, जबकि अमावास्या सात रोज दूर थी (आगे उद्धृत श्लोक देखिये)। यह देखते, इस कार्तिक मास के पूर्णिमा को चन्द्रमा भरणी में मानकर, उसको रेवती में दो दिन पूर्व यानी शुक्ल

त्रयोदशी को माना जा सकता है। यहाँ एक दिन इधर-उधर हो सकता है। अभ्यासकों में श्रीकृष्ण की इस प्रस्थान तिथि के विषय में प्रायः ऐसा ही मत है।

महाभारतकार ने यह समय शरद ऋतु की समाप्ति का बताया है। इन दिनों कार्तिक शुक्ल पक्ष समाप्त हो रहा था। किन्तु ऊपर प्रकरण ३ में बताये अनुसार महाभारत के मास मूलतः अमावास्यान्त है; फिर भी ऋतु गणना पूर्णिमान्त मासानुसार है। इस प्रकार यह कार्तिक मास अमावास्यान्त होते हुए भी उसके शुक्ल पक्ष की समाप्ति के करीब शरद ऋतु का अन्त एवं हेमन्त का आगमन बताया है।

वृकस्थल तक का प्रवास

उपप्लव्य से निकलने के बाद श्रीकृष्ण वृकस्थल कब पहुँचे ? क्या यह आम धारणा ठीक है कि वे उसी दिन शाम वहाँ पहुँचे ? यहाँ महाकवि ने यह खूबी की है कि, श्रीकृष्ण के बीच के किसी मुक्काम का निर्देश न करते सीधा वृकस्थल का ही नाम लेकर कहा है—

वृकस्थलं समासाद्य केशवः परवीरहा
प्रकीर्णरश्मावादित्ये व्योम्नि वै लोहितायति ।। ८४-२०
अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि
रथमोचनमादिश्य संध्यामुपविवेश ह ।। २१

"सूर्यकिरण अस्ताव्यस्त हो रहे थे, तथा (पश्चिम) क्षितिज लालिमामय हो रहा था, उस समय वृकस्थल पहुँचकर–२०, परमवीर श्रीकृष्ण शीघ्र रथ से उतरे, सेवक को उसे खोलने का आदेश दिया, और स्नानादि कर्म कर संध्योपासना में बैठ गये।" किन्तु इसका वास्तविक आशय इतना ही है कि, श्रीकृष्ण वृकस्थल पहुँचे तब शाम का समय था। महाकवि ने यह कहीं नहीं कहा है कि वह शाम उसी दिन की थी जिस दिन श्रीकृष्ण ने उपप्लव्य से प्रस्थान किया था ! वस्तुतः वह प्रवास कुछ दिन चला था, जिसके निम्न सूक्ष्म संकेत महाभारतकार ने दिये हैं।

मार्ग में सैकड़ों ब्राह्मणों ने श्रीकृष्ण की भक्तिपूर्वक पूजा-अर्चा की (८४-१३); महिलाओं ने उन पर पुष्पवृष्टि की (८४-१४)। इसके अलावा विशेष रूप से यह भी कहा है—

पश्यन् बहुपशून् ग्रामान् रम्यान् हृदयतोषणान्
पुराणि च व्यतिक्रामन् राष्ट्राणि विविधानि च ॥ ८४-१६

"(इस प्रवास में श्रीकृष्ण ने) कई रमणीय, आनन्ददायक, विपुल गोधन सम्पन्न ग्राम देखे, तथा विविध नगर एवं राज्यों में से होते हुए वे गये।" और इस सारे मार्ग में स्थान-स्थान पर उनका स्वागत एवं जयजयकार हुआ।

उपप्लव्यादथायान्तं जनाः पुरनिवासिनः
पथ्यतिष्ठन्त सहिता विश्वक्सेनदिदृक्षया ॥ ८४-१८
ते तु सर्वे समायान्तमग्निमिद्धमिव प्रभुम्
अर्चयामासुरर्चार्हं देशातिथिमुपस्थितम् ॥ १९

"नगरों के निवासी जन उपप्लव्य से आने वाले श्रीकृष्ण के दर्शन की इच्छा से रास्ते के किनारे समूहों में खड़े थे—१८। अपने देश में अतिथि रूप में आने वाले, ज्वलंत अग्निसमान तेजस्वी, पूजनीय भगवान श्रीकृष्ण के समीप आने पर उन सभी ने उनकी सादर पूजा की—१९।"

उस प्रवास की योजना होने पर दूसरेही रोज प्रातःकाल श्रीकृष्ण उपप्लव्य से निकल पड़े थे; फिर रास्ते के अनेक स्थानों की जनता को उनके इस अनायास शुभागमन की वार्ता मिलकर वह ऐसी सत्कार सामग्री के साथ दर्शनार्थ कैसी उमड़ पड़ी? यदि वृकस्थल तक का सारा प्रवास एक ही दिन, सुबह से शाम तक, हो जाता तो क्या मार्ग में स्थान-स्थान पर नागरिकों की भीड़ द्वारा ऐसा स्वागत सम्भव था? स्पष्टतः वह प्रवास एक से अधिक दिन चला, और इस दरम्यान उनके उस रास्ते से शुभागमन की पूर्व सूचना उनके आगे फैलती रही।

इस बारे में एक और भी संकेत है। धृतराष्ट्र के आदेश से दुर्योधन ने रास्ते में श्रीकृष्ण के स्वागतार्थ बड़ी भारी व्यवस्था कर दी थी (यद्यपि श्रीकृष्ण ने उसका लाभ नहीं लिया)।

तेषामनुमतं ज्ञात्वा राजा दुर्योधनस्तदा
सभावास्तूनि रम्याणि प्रदेष्टुमुपचक्रमे ॥ ८५-१२
ततो देशेषु देशेषु रमणीयेषु भागशः
सर्वरत्नसमाकीर्णाः सभाश्चक्रुरनेकशः ॥ १३
गुणवन्त्यन्नपानानि भोज्यानि विविधानि च
माल्यानि च सुगन्धीनि तानि राजा ददौ ततः ॥ १५
विशेषतश्च वासार्थं सभां ग्रामे वृकस्थले
विदधे कौरवो राजा बहुरत्नां मनोरमाम् ॥ १६

"इस समय उनकी (भीष्म आदि की)(धृतराष्ट्र से) सहमति देख दुर्योधन ने रमणीय विश्राम गृहों के निर्माण के लिये आदेश दिये—१२ तदनुसार रमणीय स्थान-स्थान पर सब प्रकार के रत्नों से सुशोभित अनेक भिन्न-भिन्न सभागृह बनाये गये—१३। राजा दुर्योधन ने उन्हें श्रेष्ठ खाद्य-पेय, भाँति-भाँति के भोजन, सुवासिक पुष्पमाला आदि से परिपूर्ण करवाया—१४, १५; उसमें भी विशेष रूप से वृकस्थल ग्राम में कौरव राजा ने एक बहुरत्नमय मनोरम निवासीय सभागृह खड़ा किया—१६।"

प्रवास की योजना होते ही प्रातःकाल वह आरम्भ भी होने से, यदि वृकस्थल तक का प्रवास एक ही दिन का होता तो रास्ते में विभिन्न स्थानों पर इस सारी तैयारी को पर्याप्त समय कैसे मिलता? माना कि श्रीकृष्ण के इस प्रवास की सूचना हस्तिनापुर में दूतों द्वारा पांडवों ने ही अतिशीघ्र दी होगी, तथा सम्राट दुर्योधन ने अपने अनेकानेक सेवकों द्वारा स्वागत की वह व्यवस्था तुरन्त करवाई होगी; फिर भी उसमें कुछ समय तो लगा ही होगा।

यहाँ एक संभाव्य शंका का उत्तर देता हूं; जो महाकवि की सुसंगत सूक्ष्मता पर भी प्रकाश डालेगा। स्वागत की उस व्यवस्था में केवल वृकस्थल में ही विशेष रूप से 'वासार्थं' (निवासार्थ) सभागृह खड़ा करने का उल्लेख है; शेष स्थानों पर नहीं। तो क्या इस प्रवास में श्रीकृष्ण

का केवल वृकस्थल में ही रात्रि मुक्काम था, अर्थात् उपप्लव्य से वहाँ तक वे एक ही दिन में आ पहुँचे थे ? यहाँ बात यह है कि, दुर्योधन वह व्यवस्था केवल अपने राज्य की सीमा में ही कर सकता था। किन्तु उपप्लव्य से निकलने के बाद श्रीकृष्ण अनेक 'राष्ट्रों में से' गये थे ऐसा महाभारतकार ने स्पष्ट कहा है (८४–१६ ऊपर उद्धृत)। वहाँ की व्यवस्था का दुर्योधन से क्या सम्बन्ध ? अतः इस प्रवास के अन्तिम दिन श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर साम्राज्य के प्रदेश में प्रवेश किया, वहाँ से दुर्योधन की व्यवस्था थी; और तब तक वह हो भी सकी, क्योंकि इसके पूर्व श्रीकृष्ण के प्रवास के कुछ दिन हो गये थे। यह ठीक है कि दुर्योधन के राज्य में श्रीकृष्ण का रात्रि मुक्काम एक ही था—वृकस्थल में; अतः उसकी शेष स्वागत व्यवस्था श्रीकृष्ण के तात्कालिक विश्राम हेतु थी।

इस प्रकार, महाकवि ने श्रीकृष्ण वृकस्थल पहुँचे तब सायंकाल था इतना ही खूबी से कहकर, वह प्रवासारम्भ के ही दिन का सायंकाल था ऐसा नहीं कहा है इसका मर्म स्पष्ट होगा !

लेखकों के विभिन्न तर्क

श्रीकृष्ण उपप्लव्य से पूर्णिमा के दो तीन रोज पूर्व निकले थे। उधर शांतिवार्ता भंग होकर वे हस्तिनापुर से लौटे उस दिन से अमावास्या सात दिन बाद थी ऐसा महाभारत में कहा है। इस दरम्यान आठ-नौ दिन होते हैं। यदि श्रीकृष्ण पहिले ही रोज वृकस्थल और दूसरे ही रोज हस्तिनापुर पहुँचे तथा तीसरे रोज शांतिवार्ता हो गई, तो शेष चार-पाँच रोज कहाँ गये ? उसका हिसाब लगाने वास्ते उन लेखकों को, जो वृकस्थल तक का प्रवास एक ही दिन का मानते हैं, कल्पना करनी पड़ती है कि, श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुँचने के कुछ रोज बाद शांतिवार्ता हुई, या शांतिवार्ता कुछ रोज चली, या फिर शांतिवार्ता भंग होने के बाद भी श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में ही कुछ रोज ठहरे। किन्तु इन कल्पनाओं को महाभारत में कोई आधार नहीं।

महाराष्ट्र के श्री बालशास्त्री हरदास श्रीकृष्ण का प्रवासारम्भ कार्तिक शुक्ल द्वादशी को मानते हैं; तथा कहते हैं कि एक ही दिन में श्रीकृष्ण वृकस्थल पहुँचकर वहाँ एक रात ठहरे, दूसरी रात उन्होंने हस्तिनापुर में विदुर के घर बिताई, तदनन्तर सुबह के समय शांति-वार्ता भंग होकर श्रीकृष्ण तत्काल वहाँ से लौटे, एवं हस्तिनापुर छोड़ते-छोड़ते उन्होंने कर्ण के पास युद्धारम्भार्थ 'सात दिन बाद आने वाली' अमावास्या घोषित कर दी ('भगवान श्रीकृष्ण', मराठी, पृ.३८६-४२३)। किन्तु इस अनुक्रम से शांतिवार्ता के दिन आगामी अमावास्या सात दिन बाद किस प्रकार आ सकती है ?

श्री के. श्रीनिवास राघवन् का मत है कि, श्रीकृष्ण भरणी नक्षत्र पर (यानी पूर्णिमा के करीब) हस्तिनापुर पहुँचे, फिर पांच-छः दिन शांतिवार्ता चलकर पुष्य नक्षत्र के दिन वह भंग हुई; किन्तु तत्पश्चात् भी श्रीकृष्ण उत्तराफालगुनी नक्षत्र तक (अर्थात् तीन और दिन) हस्तिनापुर में ही पड़े रहे और उसके बाद उन्होंने कर्ण के पास युद्धा-रम्भार्थ आगामी अमावास्या घोषित की (पूर्वोल्लिखित, पृ. १५)।

पं. देवकीनंदन खेडवाल लिखते हैं, "श्रीकृष्णजी कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को कौरवों की सभा में आये और उन्होंने सात दिन उन लोगों से वार्तालाप किया था" ('भारतीय कालगणना', पृ. १२८)। श्री चिं. वि. वैद्य भी लिखते हैं कि श्रीकृष्ण उपप्लव्य से हस्तिनापुर दो दिन में पहुँचे और वहाँ चार-पाच दिन रहे ("महाभारताचा उपसंहार", मराठी पृ. ११३)।

श्रीकृष्ण का कार्यक्रम

ये सारे तर्क निराधार तो हैं ही; किन्तु वे व्यर्थ भी हो जाते हैं, यदि उपप्लव्य से वृकस्थल का प्रवास एक दिन में न होते अधिक दिन चला था। वृकस्थल पहुँचने के बाद का श्रीकृष्ण का कार्यक्रम महाभारत में स्पष्ट दिया है। वहाँ श्रीकृष्ण एक रात ही ठहरे थे। इसका प्रमाण धृतराष्ट्र के इस वचन में भी मिलता है—

उपप्लव्यादिह क्षत्तरुपायातो जनार्दनः
वृकस्थले निवसति स च प्रातरिहैष्यति ।। ८६–१

"विदुर, उपप्लव्य से निकले श्रीकृष्ण अब करीब आ पहुँचे हैं; (इस समय, वे वृकस्थल में ठहरे हैं, (कल) प्रातःकाल यहाँ आ जायेंगे ।" इसी प्रकार वैशम्पायन कहते हैं—

प्रातरुत्थाय कृष्णस्तु कृतवान् सर्वमाह्निकम्
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रययौ नगरं प्रति ।। ८६–१

"प्रातःकाल उठकर श्रीकृष्ण ने सर्व आन्हिक कर्म किये; और ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त कर (हस्तिनापुर) शहर को गये ।"

हस्तिनापुर पहुँचने पर श्रीकृष्ण की धृतराष्ट्र आदि से औपचारिक प्राथमिक कुशलवार्ता हुई । फिर श्रीकृष्ण ने विदुर के यहाँ (दोपहर का) भोजन किया (८९–२३), और अपराण्ह में कुन्ती से मिलने गये (९०–१) । वहाँ से वे दुर्योधन के महल पर गये । वहाँ भोजन का आमंत्रण अस्वीकार कर (९१–१२) श्रीकृष्ण विदुर के घर पर आये (९१–३४), जहाँ उन्होंने रात्रि भोजन किया । भोजन के बाद रात्रि में दोनों का लम्बा वार्तालाप हुआ; जिसके उपरान्त श्रीकृष्ण सो गये ।

तथा कथयतोरेव तयोर्बुद्धिमतोस्तदा
शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीताय शर्वरी ।। ९४–१

"इस प्रकार वार्तालाप करनेवाले उन उभय बुद्धिमानों की वह रात्रि, जिसमें आकाश स्वच्छ एवं नक्षत्रसम्पन्न था, बाद में सुख के साथ (आनंदमय निद्रा में) बीत गई ।" सुबह शीघ्र ही शांतिवार्ता प्रारम्भ हुई—

ततः उत्थाय दाशार्ह ऋषभः सर्वसात्वताम्
सर्वमावश्यकं चक्रे प्रातःकार्यं जनार्दनः ।। ९४–५

कृतोदकानुजप्यः स हुताग्निः समलंकृतः
ततश्चादित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत माधवः ।। ६

अथ दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः
सन्ध्यां तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हमपराजितम् ।। ७

आचक्षेतां तु कृष्णस्य धृतराष्ट्रं सभागतम्
कुरूंश्च भीष्मप्रमुखान् राज्ञः सर्वांश्च पार्थिवान् ।। ८

"तदनन्तर समस्त यादवों के प्रमुख दाशार्ह श्रीकृष्ण ने शय्या से उठकर सब प्रातःकालीन कर्म किये । संध्यातर्पण, जप तथा अग्निहोत्र कर उन्होंने अलंकृत होकर उदयोन्मुख सूर्य की उपासना प्रारम्भ की । इसी समय संध्या में मग्न अपराजेय श्रीकृष्ण के पास दुर्योधन व शकुनि आये, और उन्होंने निवेदन किया कि धृतराष्ट्र तथा भीष्मादि कुरुकुल के पुरुष एवं अन्य भी सब राजे सभागृह में पधार गये हैं ।" (और आपकी उपस्थिति की प्रार्थना करते हैं—९) ।

हस्तिनापुर से वापसी

दुर्योधन के अतीव दुराग्रह के कारण शांतिवार्ता एक ही बैठक में भंग हो गई । उसका वर्णन अध्याय ९४ से १३१ में होकर, उसमें कहीं भी बीच में स्थगन या विश्राम का संकेत नहीं । उस सभा में स्वयं श्रीकृष्ण के अलावा जामदग्न्य, कण्व, एवं नारद आदि ने भी दुर्योधन को समझाने का प्रयास किया, किन्तु वह व्यर्थ गया । दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को बंदी बनाने की भी योजना की थी । किन्तु श्रीकृष्ण तत्काल कौरव दरबार से बाहर आ गये; तथा कुन्ती से मिलकर वे वैसे ही हस्तिनापुर से वापिस लौटे (१३७–३०) । शहर की सीमा तक उन्होंने कर्ण से गुप्त वार्ता कर उसे पांडव पक्ष में आ मिलने के लिये समझाया । कर्ण ने वह अमान्य किया । इस पर वहीं श्रीकृष्ण ने कर्ण के पास युद्धारम्भ तिथि घोषित करते हुए कहा—

सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम् ।। १४२–१८

"(आज से) सात दिन बाद अमावास्या आ रही है, जिसकी देवता इन्द्र बताई गई है; उस अमावास्या पर युद्ध आरम्भ किया जावे।"

इस दिन की तिथि कौनसी थी ? 'सप्तमात् दिवसात्' में पंचमी विभक्ति होने से अमावास्या सातवे रोज नहीं थी, सात रोज के बाद आठवे रोज थी। इसी सन्दर्भ में 'पंचमे पंचमे वर्षे' की तुलना मैंने पूर्व में (पृ. १२) की है। फिर यह कृष्ण पक्ष तेरह दिन का होने से उसमें दो तिथिलोप थे; एक लोप पक्ष के पूर्वार्ध में तथा दूसरा उत्तरार्ध में मानना उचित होगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण–कर्ण संवाद की (अर्थात् शांतिवार्ता की) यह तिथि कृष्ण सप्तमी हो सकती है; जिससे प्रारम्भ कर अष्टमी को दूसरा दिन मानते हुए, बीच में एक तिथि लोप रखकर, चतुर्दशी को सातवां दिन और उसके बाद अमावास्या को ठीक आठवां दिन आता है। लोप न तो प्रत्यक्ष अमावास्या का था, जिसका स्पष्ट उल्लेख उपरोक्त श्लोक १४२–१८ में तथा आगे भीष्म पर्व ३–३२ में भी आया है। न ही लोप चतुर्दशी का था, जिसका उल्लेख 'मांस वर्षं पुनस्तीव्रम् आसीत् कृष्णचतुर्दशीम्' (भीष्म-पर्व ३–३३) में आया है। अन्य किसी तिथि का लोप माना जा सकता है। वैसे दोनों तिथिलोप इस पक्ष के पूर्वार्ध में मानने पर शांतिवार्ता की तिथि अष्टमी कही जा सकती है; या दोनों लोप शांतिवार्ता के बाद मानने पर वह षष्ठी हो सकती है। किन्तु दोनों तिथिलोप इस प्रकार पास-पास मानना मुश्किल है। ऊपर के श्लोक में इस अमावास्या की देवता इन्द्र थी ऐसा कहा है, उसका स्पष्टीकरण मैंने 'महाभारत युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य' पुस्तक में दिया है।

शांतिवार्ता के इस दिन चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में था। इसके महाभारत में कई उल्लेख हैं। शांतिवार्ता भंग होकर श्रीकृष्ण ने युद्धारम्भ तिथि घोषित करते ही दुर्योधन ने अपनी सेना को कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान करने का आदेश दिया, क्योंकि पुष्य नक्षत्र योग शुभ होकर दुर्योधन प्रस्थान के लिये उस योग का लाभ लेना चाहता था। दुर्योधन

के इस आदेश की माहिती स्वयं श्रीकृष्ण में उपप्लव्य में पांडवों को इन शब्दों में दी—

आज्ञापयच्च राज्ञस्तान् पार्थिवान् नष्टचेतसः
प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुनः पुनः ॥ उद्योग पर्व १५०–३

"दुर्योधन ने बार-बार उन नष्टबुद्धि राजाओं को आदेश दिया है कि, 'आज (चन्द्रमा का) पुष्य नक्षत्र (योग) है, आप (आज ही) कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान करो'।"

ततस्ते पृथिवीपालाः प्रययुः सहसैनिकाः
भीष्मं सेनापतिं कृत्वा संहृष्टा कालचोदिताः ॥ ४

"तदनुसार वे कालप्रेरित राजे भीष्म को सेनापति बनाकर सैनिकों सहित (हस्तिनापुर से) निकल चुके हैं।" श्रीकृष्ण की इच्छा थी कि इसी शुभ पुष्य नक्षत्र योग पर पांडव भी उपप्लव्य से प्रस्थान करे। अतः उन्होंने पांडवों से आग्रह किया—

न कुर्वन्ति वचो मह्यं कुरवः कालनोदिताः
निर्गच्छध्वं पाण्डवेयाः पुष्येण सहिता मया ॥ शल्य पर्व ३५–१०

"काल से (विनाशार्थ) प्रेरित कौरवों ने मेरा कहना (शांति प्रस्ताव) नहीं माना है; अतः पाण्डवों, मेरे साथ (इसी) पुष्य नक्षत्र के दिन (कुरुक्षेत्र के लिये) प्रस्थान करो।" श्रीकृष्ण का आदेश पाण्डव कैसे अमान्य करते ? अतः इसी दिन रात्रि में बलराम आकर चले जाने के बाद (जिसका विवरण आगे दिया है) पाण्डव सेना ने उपप्लव्य से प्रस्थान कर दिया।

रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः ॥ शल्यपर्व ॥ ३५–१५
पाण्डवेयान् पुरस्कृत्य ययावभिमुखः कुरून् ॥ १६

"शूर बलराम चले जाने बाद श्रीकृष्ण पुष्य नक्षत्र पर पांडवों को आगे कर (उपप्लव्य से) कुरुक्षेत्र की ओर चले।"

इसके अलावा, स्वयं बलराम का भी वचन है कि उनकी तीर्थयात्रा, पुष्य नक्षत्र पर शुरू होकर श्रवण पर समाप्त हुई थी (शल्य पर्व ३४–६)। आगे बताये अनुसार यह यात्रा इसी दिन उपप्लव्य से शुरू हुई थी।

उपप्लव्य पहुँचना

इस प्रकार श्रीकृष्ण का वृकस्थल पहुँचना और हस्तिनापुर छोड़ना इस बीच का पूरा कार्यक्रम महाभारत में ब्यौरेवार दिया होकर, उसके अनुसार वृकस्थल में एक रात्रि और बाद में हस्तिनापुर में एक दिन-रात तथा एक सुबह इतना ही समय गया था। अतः उपप्लव्य से प्रस्थान और हस्तिनापुर से वापसी के दरम्यान जो आठ-नौ दिन का समय बीता उसका शेष अंश उपप्लव्य–वृकस्थल प्रवास में ही गया था यह निष्कर्ष अनिवार्य है, जिसके संकेत भी मैंने बताये हैं। फिर भी यदि ऊपर बताया उससे भी अधिक समय श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर में बिताया था ऐसा महाभारत के आधार से किसी ने सफलतापूर्वक सिद्ध किया, तो भले ही वृकस्थल तक का प्रवास एक दिन का माना जावे। किन्तु किसी भी हालत में श्रीकृष्ण की हस्तिनापुर से वापसी का दिन वही था, जब चन्द्र पुष्य नक्षत्र में होकर आगामी अमावास्या सात दिन बाद थी।

कर्ण के पास युद्धारम्भार्थ आगामी अमावास्या घोषित कर श्रीकृष्ण ने उसी क्षण हस्तिनापुर की सीमा छोड़ी। वे उपप्लव्य कब पहुँचे? हस्तिनापुर जाते समय उनका प्रवास आराम से चार-पांच दिन चला था। किन्तु वापसी का प्रवास उन्होंने एक दिन में ही कर लिया। यह क्यों और कैसा हुआ?

इस समय अन्तिम शांतिवार्ता विफल होकर लड़ाई अनिवार्य हो गई थी। युद्धारम्भ तिथि भी घोषित की जाकर केवल सात दिन दूर थी। एक-एक क्षण महत्व का था। उसमें भी विशेष बात यह थी कि इस रोज पुष्य नक्षत्र योग होकर श्रीकृष्ण चाहते थे कि पाण्डव इसी

दिन उपप्लव्य से कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान करें (देखिये ऊपर उद्धृत श्लोक)। इसके लिये श्रीकृष्ण का उसी रोज शीघ्रातिशीघ्र उपप्लव्य पहुँचना आवश्यक था। हस्तिनापुर छोड़ते ही श्रीकृष्ण का रथ तीव्रतम गति से दौड़ने लगा।

विसर्जयित्वा राधेयं सर्वयादवनन्दनः
ततो जवेन महता तूर्णमश्वानचोदयत् ॥ १३७-३०
ते पिबन्त इवाकाशं दारुकेण प्रचोदिताः
हया जग्मुर्महावेगा मनोमारुतरंहसः ॥ ३१

"कर्ण को बिदा कर श्रीकृष्ण ने तुरन्त अपने रथ के घोड़े बड़े वेग से हँकवाये–३० दारुक द्वारा हाके गये वे महावेगवान अश्व मानो आकाश को ही पार करते हुए मन एवं वायु के समान गति से दौड़ने लगे।" फिर भी श्रीकृष्ण सारथि को बार-बार और शीघ्रता का आग्रह करते ही रहे (१४३–५२)। किन्तु इसके अलावा महाकवि ने यह भी कह दिया है कि श्रीकृष्ण ने इस वापसी प्रवास में गाँवों और लोगों से भरा हुआ राजमार्ग छोड़कर अन्य पास का मार्ग लिया।

ते व्यतीत्य महाध्वानं क्षिप्रं श्येना इवाशुगाः
उच्चैर्जग्मुरुपप्लव्यं शार्ङ्गधन्वानमाहवन् ॥ १३७-३२

"(लम्बा) राजमार्ग छोड़कर (नजीक के रास्ते से) वे बाज पक्षी के समान वेग वाले घोड़े श्रीकृष्ण को लेकर शीघ्र ही उपप्लव्य आ पहुँचे।" इस प्रवास में वे किसी से मिलने या दर्शन देने, या कहीं विश्राम करने, नहीं रुके। आखिर सायंकाल के करीब वे उपप्लव्य आ पहुँचे।

इस प्रकार चूँकि श्रीकृष्ण के शांतिवार्ता प्रवास की प्रारंभतिथि कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी, तथा समाप्ति तिथि उसके बाद की कृष्ण सप्तमी मानी है, इस दरम्यान उनके वृकस्थल पहुँचने की तिथि कृष्ण पंचमी तथा हस्तिनापुर प्रवेश की कृष्ण षष्ठी होती है।

पाण्डवों से मन्त्रणा

उपप्लव्य पहुँचते ही श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को शांतिवार्ता का स्थूल वृत्तान्त सुनाया (१४७–१)। उस पर कुछ मंत्रणा के बाद वे विश्राम करने गये (१४७–२)। इसके पश्चात् सूर्यास्त बाद फिर पाण्डवों की श्रीकृष्ण के साथ गुप्त मंत्रणा हुई।

विसृज्य सर्वान् नृपतीन् विराटप्रमुखांस्तदा
पाण्डवा भ्रातरः पञ्च भानावस्तं गते सति ॥ १४७-३
संध्यामुपास्य ध्यायन्तस्तमेव गतमानसाः
आनाय्य कृष्णं दाशार्हं पुनर्मन्त्रमन्त्रयन् ॥ ४

"तदनन्तर पांचों पाण्डव बन्धुओं ने विराट सहित अन्य सब राजाओं को विदा किया, और सूर्यास्त पश्चात् संध्योपासना कर श्रीकृष्ण का ध्यान करते उनमें ही अपना मन लगाया। फिर उन्होंने श्रीकृष्ण को उपस्थित होने का निवेदन कर उनके साथ गुप्त मंत्रणा प्रारंभ की।" द्वितीय मंत्रणा सूर्यास्त बाद होने के उल्लेख से प्रथम मंत्रणा (तथा श्रीकृष्ण का उपप्लव्य पहुँचना) सूर्यास्त पूर्व सायाह्न के करीब मानना चाहिए। जहाँ प्रथम मंत्रणा में अन्य राजे भी उपस्थित थे, द्वितीय में केवल पाण्डव एवं श्रीकृष्ण होकर उसमें श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर की घटनाओं का विस्तृत वृत्तान्त दिया (अध्याय १४७ से १५०), तथा साथ में यह भी बताया कि दुर्योधन ने इस पुष्य नक्षत्र योग पर सेना को प्रस्थान के आदेश दे दिये हैं (१५०–३, ४, ऊपर उद्धृत, तथा १९)। दुर्योधन ने अपनी सेना को ये आदेश दिये तब श्रीकृष्ण हस्तिनापुर छोड़ चुके थे (१५३–८), तथा दुर्योधन के पास कर्ण भी तब उपस्थित था जो श्रीकृष्ण से हस्तिनापुर की सीमा पर विदा लेकर युद्धारम्भ तिथि की घोषणा का संदेश लेकर वापिस शहर में आया था। फिर श्रीकृष्ण इन आदेशों की वार्ता पाण्डवों को कैसे दे सके? किन्तु उन्होंने यह वार्ता अपने पहिले वृत्तांत में न देकर सूर्यास्त बाद के द्वितीय वृत्तांत में कही है। इससे संकेत मिलता है कि, श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में गुप्तचर छोड़ आये थे; जिन्होंने वे आदेश सुनते

ही अतीव शीघ्रता से आकर श्रीकृष्ण को उक्त प्रथम मंत्रणा के बाद वह समाचार निवेदन किया।

इसी द्वितीय मंत्रणा में उस पूर्वरात्रि काल में पाण्डवों ने धृष्टद्युम्न को प्रमुख सेनापति कर अन्य छः उपसेनापति भी नियुक्त किये। अध्याय १५१ में धृष्टद्युम्न का चुनाव है; फिर अध्याय १५७ में उसके तथा उप-सेनापतियों के अभिषेकों का वर्णन है। अध्याय १५१ से भ्रम होता है कि, धृष्टद्युम्न का प्रमुख सेनापति पद पर चुनाव होते ही पाण्डव सेना ने उपप्लव्य से कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। किन्तु प्रस्थान के पूर्व, अध्याय १५७ में बताये अनुसार, सेनापतियों के अभिषेक तथा कुछ अन्य विशेष घटनाएँ हुई, जिनका विवरण नीचे दिया है।

बलराम की तीर्थ-यात्रा

उसी रात्रिकाल में बलराम आकर श्रीकृष्ण एवं पांडवों से मिले।

तद् दृष्टोपस्थितं युद्धं समासन्नं महात्ययम् ॥ १५७-१६
प्राविशद् भवनं राजन् पाण्डवानां हलायुधः ॥१७

"राजा जनमेजय, वह महाविनाशकारी युद्ध बिलकुल निकट प्राप्त देख हल-धर बलराम पाण्डवों के भवन पर आये।" उन्होंने श्रीकृष्ण को समझाने का प्रयत्न किया कि कौरव-पाण्डवों के इस स्वजन युद्ध में वे किसी प्रकार भाग न लें। किन्तु श्रीकृष्ण ने केवल अर्जुन का सारथ्य करना मान्य किया था और उससे वे अब परावृत्त होना नहीं चाहते थे। इस पर दुखी हृदय से बलराम ने कहा—

तस्माद् यास्यामि तीर्थानि सरस्वत्या निषेवितुम्
न हि शक्ष्यामि कौरव्यान् नश्यमानानुपेक्षितुम् ॥ ३४
एवमुक्त्वा महाबाहुरनुज्ञातश्च पाण्डवैः
तीर्थयात्रां ययौ रामो निवर्त्य मधुसूदनम् ॥ ३५

"इस पर 'अतः मैं सरस्वती नदी के तीर्थों की यात्रा करने जाता हूं, क्योंकि मैं कुरुकुल वंशियों के विनाश का दृश्य सहन नहीं कर सकूँगा'

ऐसा कहकर महाबाहु बलराम ने पाण्डवों से बिदा ली, और श्रीकृष्ण को चिन्तामुक्त कर (इसलिये कि बलराम यदि क्रोध में आकर उस युद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़ते, तो पाण्डवों के लिये परिस्थिति बहुत विपरीत तथा व्यक्तिशः श्रीकृष्ण के लिये भी बड़ी जटिल हो जाती) बलराम तीर्थ-यात्रा पर चले गये ।''

इस दिन से स्वयं श्रीकृष्ण के वचनानुसार युद्धारम्भ की अमावास्या सात दिन दूर थी । उधर अमावास्या पर प्रारम्भ हुए उस युद्ध का पूरा काल अवकाश दिनों सहित पैंतीस दिन का था यह मैंने 'महाभारत युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य' पुस्तक में सिद्ध किया है । उसके अन्तिम दिन गदायुद्ध हुआ, जब बलराम अपनी तीर्थ-यात्रा समाप्त कर उपस्थित थे । इस प्रकार वह दिन उस यात्रा का ठीक ७+३५ अर्थात् बयालीसवां था, जैसा कि स्वयं बलराम ने शल्य पर्व ३४-६ में बताया है । उसी श्लोक में कहे अनुसार यात्रारम्भ दिन पर (चन्द्र का) नक्षत्र पुष्य था, तथा यात्रा समाप्ति पर श्रवण ।

फिर भी युद्ध काल की यह सारी तिथि गणना जिन्हें ज्ञात नहीं वे इस यात्रा के समय में भी व्यर्थ ही हेरफेर करते रहे । कुछ बलराम के उक्त श्लोक (शल्य पर्व ३४-६) पर ही शंका लेते हैं, कुछ उस यात्रा के कुल दिन कम करते हैं, कुछ उसका आरम्भ पाण्डवों के उपप्लव्य से प्रस्थान के बाद किसी अन्य रोज मानना चाहते हैं, तो कुछ उसका आरम्भ उस प्रस्थान के कई रोज पूर्व द्वारका से मानकर कालगणना का अपना हिसाब पूरा करने का प्रयास करते हैं । किन्तु महाभारत के श्लोक स्पष्ट बताते हैं कि, बलराम की वह यात्रा शान्तिवार्ता के ही दिन पुष्य नक्षत्र योग पर उपप्लव्य से रात्रिप्रारम्भ काल में शुरू होकर ठीक बयालीसवे दिन भीम दुर्योधन गदा युद्ध के समय समाप्त हुई । शल्य पर्व में दिया उस यात्रा का विस्तृत वर्णन भी इसी की पुष्टि करता है ।

बलराम के चले जाने के बाद उसी रात्रिसमय में रुक्मी भी पांडवों के पास आकर कुछ ही क्षणों में चला गया ।

गते रामे तीर्थयात्रां भीष्मकस्य सुते तथा
उपाविशत् पाण्डवेयाः मन्त्राय पुनरेव च ॥१५८-३९

''बलराम तीर्थयात्रा पर चले गये तथा रुक्मी भी वापिस लौट गया, उसके बाद पाण्डव पुनः महत्त्वपूर्ण मन्त्रणा के लिये बैठे ।''

पाण्डवों का कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान

इसके बाद उसी तिथि पर पाण्डव सेना ने उपप्लव्य से कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया । सेनापति चुनाव के समय युधिष्ठिर ने कहा था—

ब्रवीतु वदतां श्रेष्ठो निशा समभिवर्तते
ततः सेनापतिं कृत्वा कृष्णस्य वशवर्तिनः ॥१५१-३७
रात्रेः शेषे व्यतिक्रान्ते प्रयास्यामो रणाजिरम्
अधिवासितशस्त्राश्च कृतकौतुकमङ्गलाः ॥ ३८

''विद्यानिधान श्रीकृष्ण हमें(प्रधान सेनापति की नियुक्ति में)कृपया मार्गदर्शन करें । इस समय 'निशा' चल रही है । सेनापति नियुक्ति के पश्चात् हम श्रीकृष्ण के नेतृत्व में, शस्त्र पूजन और धार्मिक मंगल विधि सम्पन्न कर 'रात्रि' का शेष भाग समाप्त होते समय रणभूमि की ओर प्रस्थान करेंगे ।'' यहाँ 'रात्रि' शब्द का ठीक अर्थ करना आवश्यक है । 'निशा' सूर्यास्त से सूर्योदय तक होकर उसमें दोनों संध्याकाल आते हैं । किन्तु 'रात्रि' में संध्या प्रहर नहीं आते । अतः युधिष्ठिर का आशय यह है कि, पाण्डव सेना आगामी सूर्योदय के पूर्व उषःकाल में (ब्राह्म मुहूर्त पर) प्रस्थान करेगी । तिथि सूर्योदय से बदलती है । अतः उषःकाल का वह समय पुष्य नक्षत्र वाली (सप्तमी) तिथि में ही माना जाकर श्रीकृष्ण की इच्छानुसार ही पाण्डवों का उपप्लव्य से प्रस्थान हुआ ।

*

परिशिष्ट

कालगणना तालिका

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी:—	द्यूत; **वनवास प्रारम्भ**; रात्रि गंगा तट पर बिताई।
,, ,, द्वादशी:—	युधिष्ठिर की सूर्योपासना व अक्षय-पात्र प्राप्ति।
,, ,, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी:—	पांडवों का पश्चिम दिशा में जंगलों में प्रवास।
,, ,, चतुर्दशी (मध्य रात्रि):—	काम्यक वन में प्रवेश; किर्मीर वध (प्रथम काम्यक निवास)।
ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष:—	श्रीकृष्ण का शाल्व से युद्ध कर द्वारका लौटना; द्यूत व वनवास की जानकारी प्राप्त कर शीघ्र ही काम्यक वन में जाकर पाण्डवों से मिलना।
आषाढ़:—	पाण्डवों का काम्यक से द्वैतवन जाना (प्रथम द्वैतवन निवास)।
मार्गशीर्ष:—	पाण्डवों का द्वैतवन से काम्यक लौटना (द्वितीय काम्यक निवास)।
पौष से ज्येष्ठ:—	अर्जुन का अस्त्र विद्या प्राप्ति हेतु इन्द्रलोक जाने हिमालय की दिशा में काम्यक से प्रस्थान;

	हिमालय पहुँचना तथा वहाँ चार माह तप के बाद शिवदर्शन; फिर इन्द्रलोक गमन।

वनवास का एक वर्ष पूर्ण

चार और वर्ष:—	अर्जुन का इन्द्रलोक में तथा शेष पाण्डवों का काम्यक वन में निवास चालू।

वनवास के पांच वर्ष पूर्ण

ज्येष्ठ से मार्गशीर्ष शुक्ल:—	उपरोक्त निवास चालू।
मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया:—	युधिष्ठिरादि पांडवों का तीर्थ-यात्रा हेतु काम्यक से प्रस्थान।
पौष समाप्ति:—	पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम की यात्रा कर उत्तर में हिमालय पहुँचना।
माघ से ज्येष्ठ कृष्ण:—	युधिष्ठिरादि की हिमालय यात्रा तथा गंधमादन पर 'कुबेर दर्शन; अन्त में अर्जुन का इन्द्रलोक में पांच वर्ष पूर्ण कर वहाँ से लौट कर गंधमादन पर शेष पांडवों से पुनर्मिलन।

वनवास के छः वर्ष पूर्ण

चार और वर्ष:—	पांडवों का गंधमादन पर्वत पर ही निवास।

वनवास के दस वर्ष पूर्ण

ज्येष्ठ मध्य:—	पांडवों का हिमालय से वापिस नीचे उतरना प्रारम्भ।

श्रावण मध्यः— द्वैतवन के विशाखयूप वन में पहुँचना (द्वितीय द्वैतवन निवास)। वहाँ एक वर्ष निवास। इस बीच ज्येष्ठ में—

वनवास का ग्यारहवां वर्ष पूर्ण

भाद्रपद मध्य से कार्तिक मध्यः— द्वैतवन में ही किन्तु द्वैतवन सरोवर पर निवास। इस बीच दुर्योधन की घोषयात्रा।

कार्तिक कृष्ण पक्ष से माघः— द्वैतवन से काम्यक वन में तृणबिंदु सरोवर पर निवास (तृतीय काम्यक निवास)। इस दरम्यान– श्रीकृष्ण सत्यभामा की पांडवों से भेंट; दुर्योधन के वैष्णव यज्ञार्थ कर्ण का दिग्विजय; जयद्रथ द्वारा द्रौपदी हरण का प्रयास।

फाल्गुन से आषाढ़ शुक्ल पक्षः— काम्यक से फिर द्वैतवन में (तृतीय द्वैतवन निवास)। इस दरम्यान– दुर्योधन का वैष्णव यज्ञ; दुर्वासा द्वारा पांडवों की सत्त्वपरीक्षा; इन्द्र द्वारा कर्ण के कवचकुंडलों का हरण; यक्ष प्रश्न।

वनवास का बारहवां वर्ष पूर्ण

आषाढ़ शुक्ल दशमीः— अज्ञातवास योजना को अंतिम रूप।

—,,—एकादशीः— अज्ञातवास प्रारम्भ।

आषाढ़ मध्यः— विराट नगर पहुँचकर राजा विराट की सेवा में प्रवेश।

आश्विन मध्यः— ब्रह्मोत्सव; भीम-जीमूत मल्ल युद्ध।

वैशाख मध्यः— अज्ञातवास के दस मास पूर्ण।

वैशाखोत्तर द्वितीय अधिकमास,

शुक्ल पक्षः—कीचक की द्रौपदी पर पापदृष्टि।

—,,— —,,—अष्टमीः—कीचक द्वारा द्रौपदी का घोर अपमान।

—,,— —,,—नवमीः—भीम द्वारा कीचक वध।

—,,— —,,—समाप्तिः—पांडवों का पता न लगने से कौरवों को चिन्ता; विराट पर हमले की योजना।

—,,— —,,—कृष्ण सप्तमीः—सुशर्मा का विराट पर हमला; अज्ञातवास का अन्तिम दिन।

प्रतिज्ञा के तेरह वर्ष पूर्ण (अधिक मास समय सहित)

वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास

कृष्ण अष्टमीः—कौरवों का विराट राज्य पर हमला; अर्जुन का सूर्योदय समय प्रकटीकरण एवं कौरवों से युद्ध।

—,,— —,,—कृष्ण दशमीः— विराट के दरबार में सभी पांडवों का द्रौपदी सहित निजी रूप में उपस्थित होना।

—,,— —,,—कृष्ण पक्ष उत्तरार्द्धः—उत्तरा-अभिमन्यु विवाह निश्चय; पांडवों का उपप्लव्य नगर में जाना।

ज्येष्ठ शुक्ल दशमीः— दुर्योधन की गणना से तेरहवे वर्ष (अज्ञातवास) का अन्तिम दिन ।

ज्येष्ठ मध्यः— द्वारका से सुभद्रा, अभिमन्यु, श्रीकृष्ण आदि का उपप्लव्य में शुभागमन; अभिमन्यु विवाह ।

* * *

कातिक शुक्ल द्वादशीः— पांडवों का श्रीकृष्ण से शांति-वार्ता हेतु हस्तिनापुर जाने का अनुरोध ।

कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी (रेवती नत्रक्ष):—श्रीकृष्ण का उपप्लव्य से प्रस्थान ।

कार्तिक कृष्ण पंचमी (आर्द्रा नक्षत्र):— श्रीकृष्ण का वृकस्थल पहुँचना; रातभर मुक्काम ।

कार्तिक कृष्ण षष्ठी (पुनर्वसु नक्षत्र):—हस्तिनापुर प्रवेश; औपचारिक कुशल वार्ता; विदुर के घर मुक्काम ।

कार्तिक कृष्ण सप्तमी (पुष्य नक्षत्र):—असफल शान्ति वार्ता; श्रीकृष्ण का आगामी अमावास्या युद्धारम्भार्थ घोषित कर तत्काल उपप्लव्य लौटना; बलराम तीर्थयात्रा प्रारंभ, दोनों पक्षों की सेनाओं का कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान ।

(इसके वाद की तिथि गणना 'महाभारत युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य' पुस्तक में दी है ।)

★

इस लेखक की कुछ अन्य रचनाएँ

THE METAPHYSICS OF BERKELEY

"....In many ways an achievement of unusual merit. He has a sound faculty of philosophical discrimination........outstandiug philosophical merits of Mr. Kaveeshwar's work."—*London Times*. "A scholarly study. The exposition is clear, the treatment sympathetic, the criticisms acute."—Professor C. E. M. Joad (England). "Notable contribution to the history of Berkeley's philosophy"—Dr. G. A. Johnston, Geneva. "Admirable exposition....I respect the achievement"—Reviewer in *Philosophy*, London.

नीति आणि कलोपासना (मराठी)

नागपुर, बड़ोदा, मुम्बई, पुणें, कर्नाटक, इन्दौर आदि विश्वविद्यालयों द्वारा उच्च पाठ्यक्रम में नियुक्त दो प्राध्यापकों ने इस पुस्तक को चर्चा करते हुए एक पुस्तक लिखी है।।

गीतातत्वदर्शन (मराठी)

श्री शंकराचार्य, रामानुजाचार्य से लेकर तिलक, गांधी, अरविन्द, विनोबा, राधाकृष्णन् आदि के मतों की समीक्षा, तथा पाश्चिमात्य नीति-चिंतन की तुलना, के साथ लेखक ने गीता के नीति-दर्शन का अपना स्वतन्त्र स्पष्टीकरण दिया है ।

ETHICS OF THE GITA

उक्त ग्रंथ की अंग्रेजी आवृत्ति। विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक डॉ. राधकृष्णन् का प्राक्कथन; तथा भारतीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 'विद्वत्तापूर्ण अनुसंधान' के रूप में मान्यता।

PROBLEMS OF CHILD EDUCATION IN INDIA

(संपादित), भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद के प्राक्कथन सहित।

THE LAW OF KARMA

पुणे विश्वविद्यालय के रजत जयंती महोत्सव में, तथा अमेरिका में बफ्लो स्थित State University of New York में, दिये व्याख्यान।

महाभारत युद्धाची कालगणनात्मक रहस्यें (मराठी)
महाभारत युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य (हिन्दी)
CHRONOLOGICAL SECRETS OF THE MAHABHARATA WAR

इस मौलिक विवेचन पर व्यक्त विभिन्न प्रतिक्रियाएँ अन्दर 'भूमिका' में दी है।